अर्हत
(कविता)
बशीर अहमद 'मयूख'

प्रकाशक : अन्जुम मयूख
मयूख प्रकाशन
पोस्ट आ० सालपुरा
जिला कोटा (राज०)

मुद्रक :
श्री शंकर आर्ट प्रिण्टर्स
जयपुर

मूल्य :

अजिल्द दस रुपया पचास पैसा
सजिल्द बारह रुपया पचास पैसा
विशिष्ट संस्करण पच्चीस रुपया

प्रथम संस्करण
मई १९७५

समर्पण

सस्कृति के सम्यक्-चेता श्री हरिदेव जोशी को

[प्रान्तीय अध्यक्ष, श्री महावीर पच्चीस सौवा 'निर्वाण-समारोह-समिति

एवम्

मुख्य-मन्त्री राजस्थान]

कवि-नमन

नमस्कार सिद्धो को मेरा युग-पुरुषों, अरिहंतो को,
ज्ञान-प्रदाता उपाध्याय को, आचार्यों को, सतों को,
जिनके साधु-प्रयास लोक के सुख-हित-चिन्तन के हित अर्पित
अखिल विश्व के साधु-जनो को मेरे नमन-प्रणाम समर्पित ।

'मयूख'

अनुक्रम

□

कवि-कथन

ऋग्वैदिक काव्य 'स्वर्णरेख' के पश्चात् श्रमण-सूक्त काव्य 'अर्हत्' राष्ट्र की सेवा मे रख रहा हूँ । प्रस्तुत विषय मे अधिकार पूर्वक कहने का मनन-अध्ययन बिल्कुल नही है; केवल अपनी लेखन-दृष्टि निवेदन कर रहा हूँ-

भारतीय दर्शन की एक वडी विशेषता रही है; चिन्तन के आधार पर विविध मत एक-दूमरे से अलग लगते हुए भी, उनमे जाने कैसी एक नैसर्गिक मम-गध आती है द्वैत-अद्वैतवादी, नास्तिक-आस्तिक सभी किसी एक अप्रत्यक्ष धरातल पर खडे नजर आते है -(जाकी रही भावना जैसी• हरि-मूरत देखी तिन तैसी) भारतीय दर्शन की यही सम-गध हमारी सम्यक् संस्कृति का स्वरूप-निर्धारण कर रही है

और यही पर हमारी दृष्टि जाती है भारतीय दर्शन के एक चमकते नक्षत्र, अनेकात के उद्घोषक तीर्थंकर महावीर पर; जो निस्सदेह हमारी संस्कृति के अत्यन्त उदार निर्धारक रहे, उनकी बौद्धिक उदारता मतवादी कट्टरता से सर्वथा मुक्त रही ❀-[1] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र (आचरण) का यह उदार उद्घोपक समाज को कर्म-काडो मे उलझने के स्थान पर कर्मशील बनने का निर्देश देता रहा गति की स्थिति को धर्म और स्थिरता को अधर्म घोषित करता रहा, अशरीरी अमर आत्मा को कर्मानुमार बधन मे पडने वाली बताकर समाज को सत्कर्म की प्रेरणा देता रहा जीव-अजीव दो बुनियादी पदार्थो के घात-प्रतिघात से सृष्टि-सचालन का विचारणीय वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित करता रहा । एक विशेष अपूर्व बात यह हुई कि महावीर ने समाज को अपना अनुयायी-अनुगामी न बनाकर महगामी बनने की सलाह दी तीर्थंकर महावीर हमारे दर्शन, चिन्तन और सस्कृति की उज्ज्वल धरोहर हैं सम्प्रदायवाद, युद्ध और पूँजीवाद से पीडित विश्व आज श्रमण-दर्शन के अनेकात, अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धान्तो मे अपनी समस्याओ का समाधान खोज सकता है

❀ १ सव्वे विहोति सुद्धा · ·· अहत् पृ० २

सस्कृति के सम्बन्ध मे मेरी मान्यता है कि यह किसी सम्प्रदाय की न होकर राष्ट्र की-कौम की होती है और राष्ट्र केवल देश की भूगोल-रेखा तक सीमित न रहकर सस्कृति की विस्तार-सीमाएँ घेरता है. एक भूखड के निवासियो को हजारो साल तक युगपुरुष, समाज और राजनेता, सन्त और साहित्यकार आदि अपने चिन्तन और कर्म से प्रभावित करते है, तब कही जाकर इतिहास के गर्भ से उस राष्ट्र की सस्कृति का जन्म होता है.

हमारी भारतीय कौम की सस्कृति को जिन युगपुरुषो ने हजारो साल मे ढाला, वे सब हमारे पूर्वज हैं, हमारे साझे हैं हमारे इतिहास-रथ की वल्गा कभी विश्वामित्र और अगस्त्य, युगपुरुष राम और गीताकार कृष्ण ने थामी है तो कभी इस रथ पर आकर बैठ गये हैं राजपुरुष अशोक और अकबर इस इतिहास-पथ पर खीच गये हैं सुनहरी लकीर कभी बुद्ध और महावीर, नानक और कबीर, रसखान और जायसी, रहीम और तुलसी, गालिब और रवीन्द्र, अरविन्द और विवेकानन्द, तुकाराम और चिश्ती, एकनाथ और ज्ञानेश्वर, एवम् दक्षिण भारत के अनेक सन्तो-साहित्यकारो सहित महामानव गांधी. इन सारे युगपुरुषो, सामाजिको, राजनेताओ, सतो और साहित्यकारो का इतिहास हमारा इतिहास है. ये सब मिलकर हम हैं; हम अर्थात् भारत राष्ट्र अपने गहन चिन्तन एवम् आध्यात्मिक दर्शन से प्रभावित करने वाले तीर्थंकर महावीर हमारी भारतीय कौम की सस्कृति के अत्यन्त उदार निर्वारक युगपुरुष हैं

अक्सर लोग सम्प्रदायो को धर्म के नाम से पुकार देते हैं. मेरी धारणा है कि धर्म बहुवचन नही एकवचन सज्ञा है. विभिन्न नही, अभिन्न होता है. धर्म-ग्रन्थो के नाम पर मनुष्य-जाति के पास जो भी उपलब्ध ज्ञान है वह इन्सान की साझी सम्पत्ति है, विश्वजनीन है, मनुष्य के कल्याण के निमित्त है दुनिया भर मे फैले विविध सम्प्रदायो के धर्म-ग्रन्थो मे चिन्तन की दृष्टि से चाहे वैभिन्न्य रहा किन्तु मनुष्य की कल्याण-कामना से घोषित निर्देश समान रहे, सत्य शाश्वत रहा. इन प्रकाश-स्तम्भो की रोशनी मे अपना भविष्य खोजना मनुष्य-जाति के लिये कल्याणकारी होगा इन ग्रन्थो को यदि तत्कालीन समाज के नियमन की आचार-सहिता भी माना जाय, तो भी इनमे बहुत-कुछ

ऐसा है जो आज के विकट समस्याओ मे घिरे विश्व-समाज का नियमन करने मे सक्षम है मनुष्य-जाति को अपनी नियति राजनीति के बजाय दर्शन और अध्यात्म मे खोजनी होगी राजनीति समस्याएं देती है- समाधान नही.

वैसे यह धर्म नाम का हाथी वडा विशालकाय रहा. धरती के ओर-छोर घूमा; कभी शालीनता से तो कभी उद्दंड होकर. जब यह शालीन रहा तो धरती पर रामराज्य, धर्म-चक्र-प्रवर्तन हुए. उद्दंड होने पर दाशराज्ञ, महाभारत, क्रूसेड और जिहाद—अक्सर यह तब उद्दंड हुआ जब मनुष्य-जाति ने इसे राजनीति की मदिरा पिलाई. इसके अतिरिक्त मिथ्या-दृष्टि धर्म-मीमासको द्वारा इस हाथी के पूरे शरीर को समग्रता से पहिचानने एवम् अभिव्यक्त करने मे गलती होने पर भी यह हाथी उद्दंड होता रहा. [1]* जिन-दर्शन का अनेकांत, धर्म के इस गज-शरीर को समग्रता से देखने, ग्रहण करने की दिव्य-दृष्टि देता है [2]*

श्रमण-दर्शन का अहिंसा का चिन्तन केवल जीव-हिंसा की वर्जना तक सीमित नही रहता, जहां तक मैं समझता हूं—यह बहुसूत्री अहिंसा का आर्य-चिन्तन, कुशासन, दास-प्रथा, सामन्तवाद एवम् युद्ध के विरुद्ध अपने प्रबल स्वर देकर, लोकतन्त्री, समाजवादी और युद्ध-भय-विहीन, एक विश्व का सपना मुखर करता है [3]* जियो और जीने दो का उद्घोष कर 'दशवैकालिक' विश्व भाईचारे की भावना प्रकट करता है [4]* तो 'वृहत्कल्प भाष्य' सच्चे समाजवाद का स्वस्थ व्याख्याकार रहा है [5]*

जिन-दर्शन के अपरिग्रह की वात लें, तो हम देखते हैं कि आदि-मानव की कवीलो की लडाई से लेकर आज के विश्व-युद्धो तक हिंसा (युद्ध) के पीछे परिग्रह-वृत्ति (पूंजीवाद) रही है, चाहे विजेता द्वारा दास और पशु-सग्रह का मोह हो अथवा स्वर्ण-धन का आज भी हिंसक

---

[1]* जंमरणेगधम्मणो वत्थुर्णो ...... अर्हत् पृ० ...... ४

[2]* उदधाविव सर्वसिन्धव ...... अर्हत् पृ० ...... २

[3]* वय पुण एवमाइक्खामो ...... अर्हत् पृ० ...... १६

[4]* वय च विंत्ति लब्भामो ...... अर्हत् पृ० ...... १०

[5]* ज इच्छसि अप्पणतो ...... अर्हत् पृ० ...... १२

युद्धास्त्रो का निर्माण करने वाले पू जीवादी देशो के कारखाने और उनके धनकुबेर स्वामी विश्व-राजनीति का अपने पक्ष मे अप्रत्यक्ष कुटिल संचालन कर विश्व शाति मे निरन्तर बाधक बन रहे है युद्ध और पू जीवाद, हिंसा और परिग्रह-वृत्ति एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं 'आरम्भपूर्वक परिग्रह'[1] कहकर जिन-दर्शन ने इसी अर्थशास्त्रीय-सत्य का उद्घाटन किया है साथ ही मनुष्य-जाति को अपना सामाजिक नियमन, व्यवस्था बदलने की चेतावनी भी दी है.

उत्कृष्ट चिन्तन और निकृष्ट आचरण, यह मनुष्य का ऐतिहासिक सत्रास रहा, इतिहास-पुरुष महावीर इस तथ्य से अवगत और सजग थे, इसीलिये उन्होने बार-बार सिद्धान्तो को कर्म मे, ज्ञान को आचरण मे ढालने की बात जोर देकर कही

यदि मनुष्य-जाति लोकतन्त्री, समाजवादी, युद्ध-भय-विहीन एक विश्व का निर्माण चाहती है तो उसका सिद्धि सूत्र जिन-दर्शन के अनेकात, अहिंसा और अपरिग्रह जैसे सिद्धान्तो मे खोजा जा सकता है ऐसे कल्याणकारी सिद्धान्त और उन्हे आचरण मे ढालने का निर्देश हर देश और हर काल मे तीर्थंकर, पैगम्बर, युगपुरुष देते रहे हैं; चाहे वे कबीर के स्वर मे बोले हो या क्राइस्ट के, वेदान्त का उद्घोष हो या कुरान का, पायथागारस ने कहा हो अथवा लाओत्से या जरथुस्त ने

द्रष्टा सुकरात रहा हो या विश्वामित्र, सत्य सबसे उद्भूत हुआ है
अहिंसा महावीर की हो या गाधी की !
अपरिग्रह महावीर का हो या मार्क्स का !
अनेकात महावीर का हो या आइन्सटीन का

सत्य सबसे उद्भूत हुआ है, अविभाज्य है सत्य, शाश्वत है, शिव है, सुन्दर है; सत्य का इन सब द्रष्टाओ के बीच बँटवारा नही किया जा सकता इस सत्य के, इस धर्म के गज-शरीर को समग्रता से देखने की अनेकात दृष्टि ही सत्य-दृष्टि है, धर्म-दृष्टि है, सजय-दृष्टि है. इस सत्य को चाहे राजनेता न देखे पर धरती के ओर-छोर फैले क्रातद्रष्टा कवि, युग के सजय, कतार-दर-कतार खडे, व्यवस्था के सिंहासनो पर

1* 'अर्हत्' .... पृ० .... १४

आसीन अवे धृतराष्ट्रो को अपनी दिव्य-दृष्टि से उपर्युक्त सत्य का साक्षात्कार कराने का प्रयास करते आ रहे हैं. इसी कतार मे खड़ा एक अकिंचन संजय मैं भी.

ऋग्वेद के पश्चात् जैन-आगम छूने पर कुछ मित्रो की विचित्र प्रतिक्रिया मुझ तक पहुंची कुछ पाठको को भी शायद कही कुछ अटपटा सा लगे; इस विषय मे अपनी भावना एवम् चिन्तन-दृष्टि प्रस्तुत करने हेतु निम्न प्रासंगिक घटना का विवरण निवेदन करना पड रहा है—

गत १६ फरवरी को इलाहाबाद के एक सांस्कृतिक मंच पर काव्यपाठ के निमित्त आमन्त्रित था । चालीस मिनिट का कार्यक्रम प्रस्तुत करने की आज्ञा पाकर मैंने श्रोता-समाज को तीस मिनिट वैदिक एव दस मिनिट श्रमण-सूक्त-काव्य प्रस्तुत करने की घोषणा की । अध्यक्ष का आदेश हुआ कि मैं केवल वैदिक काव्य प्रस्तुत करू, महावीर-वाणी नही ।

मेरे सम्मुख विकट स्थिति, अध्यक्षीय आदेश अनुल्लघनीय होता है, एक ओर मच की यह आचारसंहिता, इधर मैं किसी संस्था का प्रचारक नही, संस्कृति की सम-गध का खोजी विद्यार्थी मात्र । जहा से मिलती है, मेरा जिज्ञासु मन वहा पहुचता है । अपनी उपलब्धि राष्ट्र के चरणो मे समर्पित करने की भावना से मच पर उपस्थित होता हूं । विचित्र स्थिति । मैंने श्रोताजन के सम्मुख उक्त संकट स्पष्ट करते हुए विकल्प स्वरूप कार्यक्रम प्रस्तुत न करने के लिये क्षमा माग कर अपना स्थान ग्रहण किया । श्रोताओ मे बैठे संस्था के कम से कम एक अधिकृत प्रवक्ता महोदय ने भी अध्यक्षीय आदेश की दुहाई देकर कार्यक्रम प्रस्तुत न करने की मेरी घोषणा का स्वागत-अनुमोदन किया ।

सवेरे संगम पर स्नान करने गया था, किया था । गगा की पाप धोने की क्षमता मे मेरा विश्वास नही । मनुष्य-जाति के ढेर सारे पापो को एक अकेली नदी कैसे धो सकती है ? पर सगम पर स्नान करते हुए गगा; मुझे नदी बिल्कुल नही लगी थी । यमुना भी नदी नही थी वहा पर, नदी नाम की सज्ञा ही नही थी । वहां तो सगम था ।

मुझे लगी थी वहा हवाओ मे, दिशाओ मे, सारे वातावरण मे व्याप्त एक संस्कृति-गन्ध, जो भारतीय दर्शन के उस पक्ष से आती है जहां चिन्तन के धरातल पर विविध मत, एक-दूसरे के विरोधी-से लगते हुए भी, जाने कैसी एक नैसर्गिक सम-गध देते है। और यही सम-गध हमारी भारतीय सस्कृति का स्वरूप-निर्धारण करती आ रही है। मैंने उस दिन सगम पर अपनी सस्कृति की इसी सम-गध मे स्नान किया था गगा मे नही।

उस दिन मुझे यह भी लगा था कि गगा मे यदि हमारे पाप-प्रक्षालन की शक्ति है तो यह उसे सगम पर ही मिलेगी, इससे पूर्व नही। जहा इससे यमुना मिलती है और सरस्वती। उस विलुप्त की भी उपेक्षा नही की जा सकती, उसकी खोज जरूरी है। उस अदृश्य को देखना पडेगा। मैंने देखा है उसे। आप भी देखना चाहे तो उसे भारत देश की भौगोलिक सीमाओ मे मत ढूढिये। वह प्रवहमान है भारतीय सस्कृति के सवाहक दक्षिण-पूर्व एशिया के बीस-बाईस देशो के भारत के सास्कृतिक राष्ट्र की सीमाओ मे, जिन्हे अगले सौ-दो सौ सालो मे मिलकर "भारत महासघ" बनना ही है। हजारो साल के बीते अतीत से जन्मे हम कुछ सौ साल आगे के भविष्य मे क्यो न झाके ?

सगम की यह विलुप्त सरस्वती अभी पिछले दिनो मुझे विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर मे भी दिखी थी। आपमे से बहुतो ने इसे देखा होगा। उन सबको मेरा आह्वान है—भारत के सास्कृतिक राष्ट्र की इस विलुप्त सरस्वती को आमन्त्रित करें—प्रत्यक्ष करें। गगा-यमुना के सगम पर वह आये, तो गगा को हमारे पाप धोने की शक्ति मिले।

इसी विलुप्त सरस्वती की चिट्ठी लेकर मैं घूम रहा हूं, वह हमारे भौगोलिक राष्ट्र का समन्वय-गधी मन कब मिलेगा ?

वसन्त-पचमी के उस माघ मेले मे भूले-भटके शिविर से गुमशुदा की तलाश-घोषणाएं हो रही थी। ऐसे शिविर भी थे जिनके प्रवक्ता धर्म और भगवान् का पता बताने की घोषणाए करते है। मेरा मन चाहा था, और मैंने अपने साथी से कहा भी, कि भूले-भटके शिविर से घोषणा करू कि धर्म और भगवान् कही खो गया है। उसे

ढूंढा जाय। उसकी हुलिया की प्रतिमा गगा के सगम पर लगी है। इलाहाबाद के मच से फिर यही घोषणा करने को मेरा मन चाहा।

प्रस्तुत काव्य शब्दानुवाद नही है, सूक्तो का भाव अपनी बुद्धि-क्षमतानुसार समझकर काव्य-रूप मे दिया है, अत मत-वैभिन्न्य होने पर विज्ञ जन मेरे अज्ञान-अल्पज्ञता को क्षमा करे

भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित ऋग्वैदिक काव्य 'स्वर्णरेख' की भाँति एकाग्रता से जीकर 'अर्हत्' को नही लिख पाया. वडी तीव्रता से अनुभव कर रहा हूँ कि प्रस्तुत काव्य मे प्राण-प्रतिष्ठा नही हो पाई. धर्मपत्नी का कॅसर रोग एवम् तज्जन्य मानसिक-आर्थिक चिन्ताएँ मन पर छाई रही.

इस विकट स्थिति मे भी इसे लिख पाया इसका निर्विवाद श्रेय मेरे प्रान्त के साहित्यिक एवम् सास्कृतिक-सुरुचि-सम्पन्न मुख्य मन्त्री श्री हरिदेव जोशी को है, जिनका अजस्र आशीर्वाद मेरे साथ रहा

साहू श्री शातिप्रसाद जैन, श्रीमती रमा जैन सहित मेरे पूर्व-प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ-परिवार का सक्रिय सहयोग, उपाध्याय मुनि श्री विद्यानन्द जी, अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी जी, आचार्य श्री हस्तीमलजी एवम् मुनिवर श्री सुशीलकुमारजी, मुनि श्री नथमलजी के स्नेह-सिक्त आशीर्वाद से मेरा मनोवल वढा. इस सन्दर्भ मे माननीय चन्दनमलजी वैद्य (वित्त मत्री राज०) श्री देवेन्द्रराज मेहता (सचिव राज० प्रान्तीय श्री महावीर निर्वाण-समारोह-समिति एव सचिव मुख्य मत्री) श्री चन्द्र-राज सिघवी (सचिव सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर) श्री माणकराज सुराणा एशियाटिक्स, जयपुर, श्री उमरावमल चोरडिया जयपुर, श्री प्रवीणचन्द्र छावड़ा एवम् श्री नाथूलाल जैन (सदस्य लोकसेवा आयोग राज०) के जो स्नेह-सहयोग मिले, उसके लिये अन्तर्मन से आभारी हूँ.

'अर्हत्' के मुद्रक श्री राधेश्याम शर्मा ने जिस आत्मीयता से प्रकाशन-व्यवस्था मे योग दिया, वह भी मेरे निकट स्मरणीय है.

एतदर्थ उपर्युक्त सभी को श्रद्धा-प्रणाम सहित श्रमण-सूक्त काव्य 'अर्हत्' राष्ट्र की सेवा मे प्रस्तुत कर रहा हूँ

एक निजी किन्तु प्रासगिक बात भी निवेदन करना है—वेद-मंत्रो को काव्य-रूप देने के पश्चात् मुझ 'काफिर' की हत्या कर दिये जाने का पुण्य कमाने का लोभ एक विशेष मनोवृत्ति को रहा है. पिछले घातक आक्रमण से जीवित बच गया, फिर नई योजनाएं बन रही है। इस बार योजनाकार को राजस्थान के एक वरिष्ठ सत्तारूढ राजनेता का वरद-हस्त भी प्राप्त है (उनके अनजाने मे नही) मैं तो परम सत्ता को समर्पित हूं, जैसी उसकी इच्छा हो एक धृष्ट घोषणा कर दूं कि जो भी अशिव, असत्य, असुन्दर है उसके सम्मुख समर्पण नही करूंगा, तोड भले ही दिया जाऊं. बहुमुखी विद्रोही हूं, सम्प्रदाय की दृष्टि मे काफिर, सत्ता की दृष्टि मे विरोधी, समाज की दृष्टि मे असामाजिक; पर मैं अकेला नही, यह विष वे सब लोग पी रहे हैं जो सम्प्रदाय, सत्ता और समाज की वर्तमान व्यवस्थाओ से असहमत है मेरे हिस्से मे कुछ अधिक विष आ रहा है. अपनी विष-पान-क्षमता से आश्वस्त हूं—पियूंगा.

अन्त मे एक विनम्र सूचना – वेद कुरान, बाइबिल, जैन-बौद्ध वाङ्मय, गुरुग्रन्थ आदि मे ऐसे अनेक निर्देश-सन्देश हैं, जो मानव कल्याण की एक-समान बात कहते है, इन ग्रन्थो की ऐसी समानार्थी सूक्तियो को एक स्थान पर रख कर उन्हे काव्य-रूप देना चाहता हूं, यदि परम-सत्ता को स्वीकार हुआ (जैसा मुझे नही लगता) तो अपनी अगली पुस्तक इसी सन्दर्भ मे राष्ट्र के चरणो मे अर्पित करूंगा. तब तक के लिये निम्न-पंक्तियो के साथ विदा .—

फिर से चोला बदल के आ जाना
इस जनम का हिसाब बन्द करो !
गा चुके हो 'मयूख' गीत बहुत
जिन्दगी की किताब बन्द करो !!

पत्रालय : सालपुरा
जनपद कोटा (राजस्थान) —बशीर अहमद 'मयूख'
१३ मई १९७५ ईसवी

अर्हत्

सव्वे वि होंति सुद्धा,
नत्थि असुद्धो नयो उ सट्ठाणे ॥४७॥

(व्यवहार भाष्य)

उदधाविव सर्वसिन्धवः,
समुदीर्णास्त्वयि नाथ दृष्टयः ।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते,
प्रविभक्तास सरित्स्विवोदधिः ॥

[विशेषावश्यक भाष्य २२६५ की टीका]

हेउविसओ वणीअं,
जय वयणिज्जं परो नियत्तो ।
जह तं तहा पुरिल्लो,
दाइंतो केण जिव्वंतो ॥३–५८

(सन्मति तर्क)

महंत

चिन्तन की प्रत्येक दृष्टि
अपने विचार के केन्द्र पर
होती शुद्ध-प्रबुद्ध ।
विविध मतो का कोई भी नय
चिन्तन के आधार पर
होता नही अशुद्ध ।।

जिस प्रकार सारी सरिताएँ
सागर मे जाकर मिल जाती
उसी भाँति, हर धर्म-दृष्टि भी
परम सत्य मे मिल जाती है ।
जिस प्रकार अगणित
सरिताओ मे भी सागर नही अवस्थित
उसी भाँति से भिन्न-भिन्न
एकान्तवाद के पक्षो मे भी
स्याद्वाद का परम सत्य रहता अनुपस्थित
स्याद्वाद ही परम सत्य है ।

जो स्वपक्ष के सिवा अन्य के किसी पक्ष को
किसी रूप मे भी स्वीकार नही करता है
उस एकान्तवाद के एकांगी विचार को
प्रतिवादी पक्षो के नेता
दूषित सिद्ध कर दिया करते ।
किन्तु किसी भी नय से सारे
पक्षो को जो करे समादृत
स्याद्वाद का सबल विजेता वह
हो सकता नही पराजित ।

णियथवयणिज्जसच्चा,
सव्वनया परवियालणे मोहा ।
ते उण ण दिट्ठसमओ,
विभयइ सच्चे व अलिए वा ।।

[सन्मति तर्क १-२८ तु०=क०पा० १]

जमणेगधम्मणो वत्थुणो,
तदंसे च सव्वपडिवत्ती ।
अन्धव्व गयावयवे,
तो मिच्छद्दिट्ठिणोवीसु ।।२२६९।।

[विशेपावश्यक भाष्य]

एक्कु करे मण विण्णि करि,
मं करि वण्ण विसेसु ।
इक्कइं देवइं जै वसइ,
तिहुयणु एहु असेसु ।।२-१०७।।

[परमात्मप्रकाश]

विविध मतो का, हर नय का वक्तव्य
सत्य है निज विचार के कन्द्र पर
किन्तु यही जव,
एक दूसरे के वक्तव्यो का आपस मे
निराकरण करने लगते है—
मत-मतान्तर वन कर तव
मिथ्या हो जाते !
अमुक सत्य है, अमुक भूठ है—
ऐसा भेद नही करता है
अनेकात-रूप का ज्ञाता।

अपनी अटकल से टटोल कर,
जिस प्रकार जन्मांध पुरुष,
हाथी के हर एक अंग को,
पूरा हाथी समझ वैठता
उसी भाँति से,
मिथ्या-दृष्टि धर्म-मीमांसक
किसी वस्तु के एक अंश को
पूरी वस्तु मान लेते हैं।

भेद मत करो सम्प्रदाय में

राग-द्वेष मत करो वन्धु तुम
गर्व मत करो उच्च जाति का,
त्रिभुवन की सव जीव-राशि
शुद्धात्म-रूप होने के कारण
है समान देखो अभेद-नय से हे आत्मन्!
सव जीवो की जाति वरावर।

जो ण करेदि जुगुप्पं,

चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।

स खलु णिव्विदिगिंछ्हि,

सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३१॥

[समयसार]

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो,

न दीसइ जाइविसेस कोई।

[उत्त० अ० १२ गा० ३७]

पन्ना समिक्खए धम्मं ।२३।२५

विन्नाणेण समागम्म, धम्मसाहण मिच्छिउं ।२३।३१

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविहविगप्पणं ।२३।३२

[उत्तराध्ययन सूत्र]

दुविहे धम्मे, सुयधम्मे चेव, चरितधम्मे चेव ।२।१

जदित्थ णं लोगे, तं सव्वं, दुपश्रोश्रारं ।२।१

दुविहे बंधे, पज्जबन्धे चेव, दोसबंधे चेव ।२।४

[स्थानांग]

ग्लानि मत करो, भेद मत करो
विविध जाति, कुल, सम्प्रदाय मे
जीव-वस्तु के विविध धर्म मे ।
ऐसा ही साधक होता है
सम्यग्दृष्टि, विहीन-विचिकित्सा ।

तप का तो दिखता प्रभाव प्रत्यक्ष मगर,
सम्प्रदाय की कुछ विशिष्टता आती नही नजर ।

धर्म-समीक्षा करती है साधक की प्रज्ञा
निर्णय होता धर्म साधनो का विवेक-विज्ञान से
धर्मों के जो विविध-वेश के भाँति-भाँति के है विकल्प
वे केवल जन-साधारण के प्रत्यय है पहिचान के ।

धर्म

तत्व-ज्ञान, श्रुत-धर्म है, चरित-नीति, आचार
दो स्वरूप हैं धर्म के, मानव इन्हे विचार ।
जड–चेतन दो शब्द मे सीमित विश्व-विधान
प्रेम और विद्वेष के बन्धन भी दो जान ।

धम्मा-धम्मा न परप्पसाय-
कोपाणुवत्तिश्रो जम्हा ।३२५४

[विशेषावश्यक भाष्य गाथा]

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमस्संति
जस्स धम्मे सया मणो ।१।१

[दशवैकालिक]

धम्मो दयाविसुद्धो ।८५

[बोध पाहुड]

एगंतेण निसेहो,
जोगेसु न देसिश्रो विही वाऽवि ।
दलिश्रं पप्प निसेहो,
होज्ज विही वा जहा रोगे ।।५५

[ओघ० नि० आ० भद्रबाहु]

आत्मा की निज की परिणति ही
धर्म-अधर्म की व्याख्याकार,
प्रसन्नता या क्रोध अन्य का
नही बना इसका आधार।

तप–अहिंसा और सयम
धर्म के ये तीन लक्षण।
और इनको आचरण मे ढालना ही धर्म है, अति श्रेष्ठ है
उत्कृष्ट मंगल, धर्म है।
मर्म जो भी जान पाया
मन रमा बैठा धरम मे
उस मनीषी को नमस्ते
भेजते है देवता भी।

पावनता है जहाँ दया की वहाँ धर्म है।

धर्म-क्रान्ति-घोष

जिन-शासन मे कोई भी जन
बंधा नही एकान्त-रूप से
किसी वर्जना या विधान से।
जैसा रोग, चिकित्सा वैसी,
जैसी स्थितियाँ पैदा हो
विधि-विधान हो तदनुसार ही।

णवि किंचि अणुण्णायं,
पडि सिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं ।
एसा तेसिं आणा,
कज्जे सच्चेण होयव्वं ॥५२४८

[निशीथ भाष्य]

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो ।२५।३१
समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥२५।३२
कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वईसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥२५।३३

[उत्तराध्ययन]

वयं च वित्ति लब्भामो
न य कोइ उवहम्मइ ।१।४

[दशवै.]

असंविभागी न हु तस्स मोक्खो ।९।२।२३

[दशवै.]

नही जनेश्वर ने की है एकान्त वर्जन।
किसी कर्म की,
और न, दी, एकान्त आज्ञा।
प्रामाणिकता और सत्य-सम्मत
सुकर्म हो हर मानव का।
निर्णायक, साधक की प्रज्ञा॥

कर्मणा धर्मः

सिर-मुडन से कोई श्रमण नही बन जाता,
और ब्राह्मण नही ओम् का जप करने से,
कुश-चीवर धारण करने से कोई तापस नही कहाता,
ऋषि-मुनि नही बना करते है केवल निर्जन मे रहने से!
समता-दर्शी श्रमण, ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से,
तप से तपसी, और मनन से मुनि होता है।
कर्म प्रभावित करता जन को, यह सुविचारित
ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सब कर्माधारित।

समाजवाद

कष्ट न हो औरों को
ऐसे जिये
जीवन-रस बाँटे सबको
खुद पियें।

अर्जित धन को बाँटता
जो न पुनः ससार को
उसकी मुक्ति नही होती।
वह असविभागी समाज का कोढ है।

णाहेण अप्पगाहा,
समुद्दसलिले सचेल अत्थेण ।५

[सूत्र पाहुड]

जो जत्थ होइ कुसलो,
सो उ न हावेइ तं सइ बलम्मि ।१०।५०८
उवकरणेहि विहूणो,
जह वा पुरिसो न साहए कज्जं ।१०।५४०

[व्यवहार भाष्य]

सएणं लाभेणं तुस्सइ
परस्स लाभं णो आसाएइ
दोच्चा सुहसेज्जा ।४।३

[स्थानांग]

जं इच्छसि अप्पणतो,
जं च न इच्छसि अप्पणतो ।
तं इच्छ परस्स वि,
एत्तियगं जिणसासणयं ।।४५८४।।

[बृहत्कल्प भाष्य]

सागर में होता अथाह जल
कपड़े धोने के निमित्त पर
ग्रहण किया जाता थोडा ही।
इसी भाँति उपलब्ध वस्तु मे से भी
आवश्यकतानुसार ही
ग्रहण करो तो श्रेयस्कर है।

जो जन जिसमे कुशल और निष्णात है
करे नियोजित इसी कार्य मे क्षमता-मन,
पर, अभीष्ट उद्देश्य-कार्य को निश्चय ही
सिद्ध नही कर सकता साधन-हीन जन।
[अत राष्ट्र के जन को समुचित साधन दो।
पगु बनी प्रतिभाओ को अभिवादन दो।]

स्वय अर्जित लाभ मे सन्तुष्ट जो जन,
जो, न लेना चाहता है अन्य का धन
वह सदा सुख-नींद सोता
सर्व चिन्ता-मुक्त मन।

जो तुम अपने लिए चाहते,
वही अन्य के हित भी चाहो।
जो निज के हित नही चाहते,
दो, न, अन्य को वह परिवेश।
बस इतना ही जिन-शासन है,
यही तीर्थंकरो का उपदेश।

नत्थि छुहाए सरिसया वेग्रणा ।२६०

[ग्रोघ निर्युक्ति भाष्य]

लाभुत्ति न मज्जिज्जा,

ग्रलाभुत्ति न सोइज्जा ।

बहुंपि लद्धुं न निहे,

परिग्गहाग्रो ग्रप्पाणं ग्रवसक्किज्जा ।।१।२।५

[ग्राचारांग]

ग्रारम्भपूर्वको परिग्रहः ।१।२।२

[सूत्रकृतांग चूर्णि]

जहा दुमस्स पुप्फेसु,

भमरो ग्रावियइ रसं ।

न य पुप्फं किलामेइ,

सो य पीणेइ ग्रप्पयं ।।१।२।।

[दशवै]

भूख

भूख बड़ी ही कष्टप्रदाता।
नही वेदना जग मे कोई
बड़ी क्षुधा से !!

अपरिग्रह

धन पाकर तुम गर्व करो मत
नही मिले, तो शोक न भारी।
अधिक मिले, तो संचय मत कर
परिग्रह-वृत्ति नही सुखकारी ॥

हिंसा विना नही होता है धन का सग्रह,
अत. अहिंसक मानव त्यागे सारे परिग्रह।

भार नही पड़ता गृहस्थ पर किसी भाँति का
ऐसे करते भिक्षा से निर्वाह साधुजन।
रस करता है ग्रहण पुष्प से जैसे भँवरा
किन्तु न होने देता उसकी क्षति या विघटन !

ता भुज्जिउ लच्छी,

विज्जउ दाणे दयापहाणेण ।

जा जल तरंग अवला

दो तिण्णि दिणाइ चिट्ठेइ ॥१२॥

[कार्तिकेयानु गाथा]

वयं पुण एवमाइखामो, एवं भासामो,

एवं परुमेमो, एवं पण्णवेमो,

सव्वे पाणा, सव्वे भूया,

सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता,

न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा,

न उद्दवेयव्वा !

इत्थं विजाणह नत्थित्थ दोसो ।

आरियवयणमेयं ।१।४।२

(आचारांग)

जल-तंरग सी चंचल लक्ष्मी
ठहरेगी दिन तीन ।
जब तक तेरे पास बनी है
आवश्यकता के हित उसका
कर तू भोग प्रवीण ।
साथ-साथ ही दया-भाव से
शुभ कर्मों मे दान कर ।
[तू केवल धन का विनियोजक
ऐसा निज को मान कर]

अहिंसा

अहिंसा के सजग सिद्धान्त की हम व्याख्या करते,
कि हम प्रारूप देते है-कि हम प्रज्ञापना करते,
किसी भी जीव-प्राणी, सत्व की हिंसा न हो जाये,
धरा पर युद्ध-हत्या की सचेतक वर्जना करते।
कभी भी त्रास मत देना, बना कर दास प्राणी को
कभी उत्पात मत करना, न हो अन्याय का शासन
अहिंसा धर्म की निर्दोष यह उपरोक्त व्याख्या है
अहिंसा आर्य चिन्तन है, सजग सिद्धान्त है पावन ।

एसा भगवई अहिंसा—

भीयाणं व सरणं,

पक्खीणं व सरणं,

तिसियाणं व सलिलं,

खुहियाणं व असणं,

समुद्दमज्झे व पोत-वाहणं,

दुहियाणं ओसहि-बलं,

अडविमज्झे व सत्थगमणं,

एत्तो विसिट्ठतरिया अहिंसा ।१।

(प्रश्न व्या० सँवरद्वार)

आहच्च हिंसा समितस्स जा तू,

सा दव्वतो होति ण भावतो उ ।

भावेण हिंसा तु असंजतस्सा,

जे वा वि सत्ते ण सदा वधेति ।।३९३३

(वृहत्कल्प भाष्य)

जले जीवाः स्थले जीवाः,

आकाशे जीवमालिनि ।

जीवमालाकुले लोके,

कथं भिक्षुरहिंसकः ।।

[जैन आगमो मे स्याद्वाद । भाग १ पृष्ठ ३०]

(सू. सं. १६६)

शरण पक्षियो को देता ज्यो
नील गगन का मुक्त प्रसार,
प्यासे को पानी, भूखे को
जैसे भोजन का ग्राधार,
सार्थवाह का साथ सफर मे
रोगी को ग्रौषधि का पान,
सागर-मध्य डूबते जन को
मिल जाये जैसे जलयान,
इन सबसे भी ग्रधिक बड़ा है
एक ग्रहिसा का सबल,
यह भगवती ग्रहिसा ही है
भयभीतो का शरण-स्थल।

जो साधक सयम से रहता
यदि उससे हिसा हो जाये,
कहते उसे द्रव्य की हिसा
हिसा होती नही भाव की,
किन्तु ग्रसंयम से रहने वाला साधक तो
चाहे जीवन भर न करे वध किसी जीव का
तो भी हिसा करता रहता भाव-रूप से।

जल-थल-गगन सभी जीवों से भरा पड़ा है।
जीवो के इस महालोक मे रहकर प्राणी
हिसा से किस भाँति बचेगा ?
इसका सूत्र सुनो हे मुनिजन !

जो भण्णदि हिंसामि य,
हिंसिज्जामि व परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणि,
णाणी एत्तो दु विवरीओ ।।२४७

[समयसार]

रागादीणमणुप्पा,
अहिंसगतं ति देसिदं समये ।
तेसिं चे उप्पत्ती,
हिंसेति जिणेहिं णिद्दिट्ठा ।।१।।

[कषाय पाहुडिकी गा० ५२]

णाणं पयासगं,
सोहओ तवो, संजमो य गुत्तिकरो ।
तिण्हं पि समाजोगे,
मोक्खो जिणसासणे भणिओ ।।१०३।।

[आव० नि०]

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा ।
सागाराणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठि ।।१०२।।

[प्रवचनसार]

मैं जीवो को मार रहा हूँ,
अथवा अन्य किसी से उनको हत करवाता—
ऐसा जो भी सोचे,
वह अज्ञानी जन है।
ज्ञानी इससे भिन्न सोचता।

राग-द्वेष आदि परिणाम-भाव यदि मन मे
उदय न हों तो
यही अहिंसा है शास्त्रो मे।
इनका मन मे पैदा होना ही हिंसा है।
यही जिनेश्वर की वाणी है
यही अहिंसा का दर्शन।

मोक्ष

तप विशुद्ध करता साधक की आत्मा
ज्ञान उसे देता प्रकाश की दिव्य किरण
संयम करता है निरोध दुष्कर्मो का
तीनों का समयोग मोक्ष है
जिन-शासन का यही कथन।

खोले गाँठ मोह की अपने
राग-द्वेष का भाव हरे।
सम्यग्दृष्टि रखे सुख-दुख मे
वही मोक्ष का वरण करे॥

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अन्नाण-मोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं ।।

[आचा० श्रु० १ अ० २ उ ५]

परिणामादो बंधो,
मुक्खो जिणसासणे दिट्ठे ।।११६।।

[भाव पाहुड]

सव्वारंभ-परिग्गहणिक्खेवो
सव्वभूतसमया य ।
एक्कग्गमणसमाहाणया य,
अह एत्तिओ मोक्खो ।।४५८५।।

[वृहत्कल्पभाष्य]

णियमं मोक्ख उवायो
तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं ।।४।।

[नियमसार]

निर्मल करो ज्ञान को अपने
त्यागो मोह और अज्ञान।
राग द्वेष को नष्ट करो तो
मिले मोक्ष जो सुख की खान ।।

साधक की परिणाम-भावना से ही
मुक्ति-मोक्ष मिलता है
और भावना से ही होता है बंधन
यह जिन-शासन का कथन।

सभी करें, आरम्भ और परिग्रह का त्याग
हर प्राणी के लिए रखें समता का भाव,
और चित्तको दें समाधि-रूपी तन्मयता
तो समझो हो गया मोक्ष का प्रादुर्भाव ।।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र नियम है।
इनका पालन मुक्ति-मार्ग है
और परम निर्वाण, नियम-पालन का फल है ।।

जह णवि लहदि हु लक्खं,
रहिओ कंडस्स वेज्झय विहीणो।
तह णवि लक्खदि लक्खं,
अण्णाणी मोक्खमग्गस्स ॥२१॥

[बोध पाहुड]

ण हि आगमेण सिज्झदि,
सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु।
सद्दहमाणे अत्थे,
असंजदो वा ण णिव्वादि ॥१२९॥

[प्रवचनसार]

जे आसवा ते परिस्सवा,
जे परिस्सवा ते आसवा,
जे अणासवा ते अपरिस्सवा,
जे अपरिस्सवा ते अणासवा ॥१।४।२

[आचारांग]

धम्मम्मि णिप्पवासो,
दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलणिग्गुणयारो,
णडसवणो णग्गरूवेण ॥७१॥

[मोक्ष पाहुड]

विना वाण के लक्ष्य-भेद
कर सकता नही धनुर्धर जैसे,
विना ज्ञान के मोक्ष-लक्ष्य भी
प्राप्त नही हो सकता वैसे।

मुक्ति नही होती है केवल शास्त्र-ज्ञान से,
सम्यक् श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, रुचि आवश्यक है।
श्रद्धा-भक्ति आदि हो जाने पर भी मानव
सयम का सिद्धान्त न पाले यदि जीवन मे,
तो उसका निर्वाण न होता।

जो बन्धन के हेतु बने है
वही मोक्ष के भी हो सकते।
हेतु बने जो आज मोक्ष के
वन सकते है कल वे बन्धन।
अतरंग भावों पर होता
इन सबका स्वरूप-निर्धारण॥

मोक्ष-मार्ग है मात्र नही नगा हो जाना।
बसे न जिसका चित्त धर्म मे
दोषो का आवास हो,
ईख-फूल सा निष्फल-निर्गुण
जिस मुनि का सन्यास हो,
ऐसा श्रमण नग्न वेश मे
अभिनय करने वाला नट है।

पक्के फलह्मि पडिए जह ण फलं वज्झए पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेई ॥१६८॥

[समयसार]

हयं नाणं क्रियाहीणं,
हया अन्नाणओ किया ।
पासतो पंसुलो वड्ढा,
धावमाणो य बणओ ॥११५९॥
संजोगसिद्धीह फलं वयन्ति,
न हु एगचवकेण रहो पयाइ ।
अंधो य पंगू य वणं समिच्चा,
ते संपउता नगरं पविट्ठा ॥११६५॥

[विशेपावश्यक भाष्य]

जहा दड्ढाणं पीयाणं,
न जायंति पुण अंकुरा ।
कम्मवीयेसु दड्ढसु,
न जायन्ति भवंकुरा ॥५-१५॥

[दशाश्रुत]

पेड से फल पक कर गिरता
नहीं हो सकता फिर सम्पृक्त
पुनः अपनी ही टहनी से।
जीव का कर्म-भाव पक कर
कि जब गिर जाता है तब पुनः
उदय को प्राप्त नही होता ॥

पगु व्यक्ति कितना भी देखे लगी आग को
और अध कितना भी दौडे
जलने से बच नही सकेगा।
किन्तु अन्ध यदि
कधो पर बैठा ले अपने पगु बधु को
और पगु पथ को दिखलाये—
दोनो पार निकल जायेगे! (ज्वलित अग्नि से)
इसी भाँति से
क्रिया-हीन ज्ञान हत होता,
ज्ञान-विहीन क्रिया भी निष्फल!
[अन्तस्तल की शुद्ध भावना
दया-धर्म के वहिर्तत्त्व से—
मिलने पर ही मिल पाता है
महामोक्ष का पावन फल।]

जिस प्रकार से किसी बीज के
अग्नि-दग्ध हो जाने पर फिर
उससे अकुर नही निकलता
उसी भाँति से,
कर्म-रूप बीज जलने पर
उससे अकुर नही निकलता
[मुक्त जीव फिर धारण करते नही जन्म को]

जह विसभुवभुंजंतो,
वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पुग्गलकम्मस्सुदयं,
तह भुंजदि णेव वज्झए णाणी ॥१६५॥

[समयसार]

सेणावंतिमि निहते,
जहा सेणा पणस्सति ।
एवं कम्माणि णस्संति,
मोहणिज्जे खयं गए ॥५-१५॥

[दशाश्रुत]

भोगी भोगे परिच्चयमाणे महाणिज्जरे
महापज्जवसाणे भवइ ।७।७।

(भगवती सूत्र)

विष खाता है वैद्य किन्तु मरता नही
उसी भाँति से सम्यक्-बोधी आत्मा
कर्मोदय के कारण सुख-दुख भोगती
पर उससे आबद्ध-लिप्त होती नही ।

जिस प्रकार सेनापति के हत हो जाने पर
सारी सैन्य पलायन करती
अथवा मारी जाती है,
उसी भाँति से, राग-द्वेष के
कारण-भूत मोह-कर्मो के
क्षय हो जाने से निश्चय ही
शेष सभी दुष्कर्मों का क्षय
अपने आप स्वत. हो जाता ।

त्याग-भाव

जो समर्थ होकर भी करता
भोगो का परित्याग,
वह कर्मो की करे निर्जरा,
मिले महा फल-भाग !

नाण-दंसण-सम्पन्नं, संजमे य तवे रयं ।
एवं गुण-समाउत्तं, संजयं साहु मालवे ।।
जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठी कुव्वई ।
साहीणे चयइ भोए से हु चाइ त्ति वुच्चई ।।

(दश० अ० गा० ४६)

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा,
संरक्खण परिग्गहे ।
अवि अप्पणो वि देहम्मि,
ना परन्ति ममाइयं ।।६।२२।।

(दशवैकालिक)

न वि अत्थि न वि अहोही,
सज्झाय समं तवोकम्मं ।११६६।

(वृ० भा०)

जई वणवासमित्तेणं नाणी जाव तवस्सी भवति,
तेण सीहवग्घादयो वि ।।१।७।१।।

(आचाराग चूर्णि)

सद्‌गुण धारण करने वाला
संयम-तपश्चरण मे लीन,
सच्चा साधु वही जो दर्शन–
और ज्ञान मे पूर्ण प्रवीण ।
सुन्दर प्रिय भोगों को पाकर भी
जो देता उन्हे नकार,
सच्चा त्यागी वही कि जिसको
किंचित् नही भोग से प्यार ।।

समता-भोगी वीतरागियो का
ममत्व जब नही देह पर,
पात्र-वस्त्र आदि की ममता
वे कैसे रख सकते हैं ?

तप

वर्तमान मे, या अतीत मे, या भविष्य मे,
स्वाध्याय सा तप न हुआ है, और न होगा !

यदि केवल वन मे रहने से–
ज्ञान मिले, तप हो जाता हो–
तो फिर सिंह-बाघ आदि सब
ज्ञानी और तपस्वी होते ।

अरोगचित्ते खलु अयं पुरिसे।
से केयणं अरिहए पूरइत्तए।
अरोमदंसी निलण्णे पावेहिं कम्मेहिं।१।३।२

[आचारांग]

विणओ सासणेमूलं,
विणीओ संजओ भवे।
विणयाओ विप्पमुक्कस्स,
कओ धम्मो कओ तवो ? ३४६८

[विशेषावश्यक भाष्य गाथा]

पव्वयराइसमाणं कोहं अणुपविट्ठे जीवे
कालं करेइ णेरइएसु उववज्जति।
सेलथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे
कालं करेइ णेरइएसु उववज्जति।
वंसीमूलकेतणासमाणं मायं अणुपविट्ठे जीवे
कालं करेइ णेरइएसु उववज्जति।
किमिरागरत्तवत्थसमाणं लोभं अणुपविट्ठे जीवे
कालं करेइ णेरइएसु उववज्जति।४।२

[स्थानांग]

हैं अनेकों कामनाएँ, हैं अनेको मन
चित्त की हर वृत्ति है बिखरी हुई उन्मन,
क्षुद्र भोगों की न हो यदि कामना
तो न डूबे पाप में, निष्पाप हो जीवन।

सयम कर सकता विनीत ही
जिन-शासन का मूल विनय ।
विनयहीन साधक का जग में
व्यर्थ धर्म-तप है निश्चय ।

उग्र क्रोध, अविचल दरार जैसे पर्वत की,
अहकार, जैसे अनमित पाषाण-स्तम्भ,
लोभ, कि जैसे हो मजीठ का पक्का रंग,
और बाँस की जड सा गाठ-गठीला दम्भ,
ले जाते हैं नरक दिशा को आत्मा
ये सब दूषण दूर करे परमात्मा ।

जहा महातलागस्स,
सन्निरुद्धे जलागमे ।
उस्सिचणाए तवणाए,
कमेणं सोसणा भवे ॥५॥
एवं तु संजयस्सावि,
पावकम्मनिरासये ।
भवकोडीसंचयं कम्मं,
तवसा णिज्जरिज्जइं ॥६॥

[उत्तरा० ३०]

झाणणिलीणो साहू,
परिचागं कुणई सव्वदोसाणं ।
तम्हा दु झाणमेवहि,
सव्वदिचारस्स पडिकमणं ॥९३॥

[नियमसार]

जैसे किसी तडाग मे
जला गमन का द्वार रोक कर
जल-निकास कर देने से
सूर्य-ताप से सारा जल उड जाता है,
उसी भाँति सयमी साधु भी
राग-द्वेष के पाप-द्वार मे लगा अर्गला
सचित कर्मों का क्षय करता
अपने तप-कर्म के द्वारा।

ध्यान

ध्यान-लीन साधक समर्थ—
होता हर दोष-निवारण मे
सब दोषो—अतिचारों का प्रतिक्रमण
ध्यान से सम्भव है।

छिन्दन्ति भावसमरणा,

झाणकुठारेहिं भवरुक्खं ॥१२२॥

[भाव पाहुड]

तह रायानिलरहिओ,

झाणपईवो वि पज्जलई ॥१२३॥

[भाव पाहुड]

मा चिट्ठइ मा जंपह मा चिन्तह,

किं वि जेण होइ थिरो ।

अप्पा अप्पम्मि रओ,

इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

[द्रव्य संग्रह]

चरणगुणविप्पहीणो, वुड्डई सुवहुंपि जाणंतो ।।९७।।

सुवहुंपि सुयमहीयं,

किं काही चरणविप्पहीणस्स ?

अंधस जह पलित्ता,

दीवसय सहस्सकोडी वि ।।९८।।

अप्पं पि सुयमहीयं,

पयासयं होइ चरणजुत्तस्स ।

इक्को वि जह पईवो,

सचक्खुअस्सा पयासेइ ।।९९।।

जहा खरो चंदणभारवाही,

भारस्स भागी न हु चंदणस्स ।

एवं खु नाणी चरणेण हीणो,

नाणस्स भागी न हु सोग्गईए ।।१००।।

[आचार्य भद्रबाहु, आव० नि०]

हयं नाणं किया हीणं,

हया अन्नाणओ किया ।

पासंतो पंगुलो दड्ढो,

धावमाणो अ अंधओ ।।१०१।।

[आव० नि०]

जिसके नयन खुले हैं उसको
एक दीप की ज्योति बहुत है।
कोटि दीप बालो तो भी क्या
अंधे को प्रकाश मिल सकता ?
जो चरित्र से हीन व्यक्ति है
वह कितना भी करे अध्ययन विविध शास्त्र का—
तो भी ज्ञानी नही बनेगा ।
सच्चरित्र साधक थोड़ा भी करे अध्ययन
तो निश्चय ही ज्ञान मिलेगा ।
एक गधा चाहे चदन का भार उठाये
तो भी उसको मलय-गध का बोध न होता,
इसी भाँति से, जो चरित्र से हीन व्यक्ति है
उसकी सद्‌गति कही नही, वह
केवल ज्ञान-भार भर ढ़ोता ।

वन मे अग्नि लगे तो, जैसे
पंगु व्यक्ति कितना भी देखे,
चक्षु-हीन कितना भी दौडे,
दावानल से बच न सकेगा ।
इसी भाँति से जो आचार-हीन ज्ञान है
और ज्ञान से हीन आचरण
उसका नाश अवश्यम्भावी
[दे न सकेगा वह समाज को अभिनव चिन्तन ।]

जह कणयमग्गितवियं पि,
कणयभावं ण तं परिच्चयइ ।
तह कम्मोदयतविदो,
ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥१८४॥

(आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार)

जह जह सुज्झइ सलिलं,
तह तह रूवाइं पासई दिट्ठी ।
इय जह जह तत्तरूई,
तह तह तत्तागमो होई ॥११६३॥

[आव० नि०]

णाणी रागप्पजहो,
सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पइ रजएण दु,
कद्दममज्झे जहा कणयं ॥
अण्णाणी पुण रत्तो,
सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरूएण दु,
कद्दममज्झे जहा लोहं ॥२१८–२१९॥

[समयसार]

निज स्वरूप को नही छोड़ता है ज्ञानी
कर्मोदय के कारण यदि होता उत्तप्त ।
अग्नि-तप्त होने पर भी जैसे कुन्दन
नही छोडता है अपने निज का स्वर्णत्व ।।

निर्मल जल होगा जितना भी स्वच्छतर
साफ़-साफ देखेगा द्रष्टा, उतना ही प्रतिविम्व को
जगती जितनी तत्त्व-ज्ञान की रुचि मानव के अतर मे
उतना करती प्राप्त आत्मा, तत्व-ज्ञान अभ्यतर मे ।

जैसे कीचड मे पड़ा स्वर्ण
कर्दम मे लिप्त नही होता
लगता है उस पर जंग नही
वैसे ही ज्ञानी जन जग मे
करता है कर्म किन्तु उनसे
होता न लिप्त, रहता विरक्त ।
इसके विरुद्ध अज्ञानी जन
रखता पदार्थ में राग-भाव
हो जाता दूषित-कर्म-लिप्त
जैसे लोहा कीचड़ मे पड़
हो जाता विकृत जग-युक्त ।।

आदा णाण पमाणं,
णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं ।
णेयं लोयालोयं, तम्हा णाणं तु सव्वगयं ॥१।१४॥

[प्रवचन०]

आगमहीणो समणो, णेवप्पाणं परं वियाणादि ॥३।३३॥

[प्रवचन०]

रागो जस्स पसत्थो,
अणुकंपा संसिदो य परिणामो ।
चित्तम्हि णत्थि कलुसं,
पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥१३५॥

[पचास्तिकाय]

ज्ञानधनानां हि साधूनां
किमन्यद् वित्तं स्यात् ? ॥१।१४॥

[सूत्रकृताग चूर्णि]

णाणे णाणुवदेसे,
अवट्टमाणो उ अन्नाणी ॥४७९१॥

[निशीथ भाष्य]

आत्मा ज्ञान-प्रमाण है
और ज्ञान है ज्ञेय-प्रमाण;
लोकालोक प्रमाण ज्ञेय है,
अत ज्ञान है सर्व प्रमाण ।।

नही जानता है निज को, या अन्य को
शास्त्र-ज्ञान से शून्य श्रमण ।।

जिसका राग प्रशस्त है
मन में नही कलुष का भाव
अनुकपा की वृत्ति हृदय मे जागृत
और स्नेह से सिक्त स्वभाव
उस प्राणी को पुण्य का
होता आश्रव-प्रादुर्भाव ।

जो कि ज्ञान के वैभव से
हैं समुचित सम्पन्न,
नही चाहिये ऐश्वर्य
उन्हे विश्व का अन्य ।

ज्ञान-सम्मत आचरण करता न जो
ज्ञान पाकर भी निपट वह मूर्ख है ।

सुवइ य अजगर भूतो,
सुयं पि से णासती अमयभूयं ।
होहिती गोणब्भूयो,
णट्ठंमि सुये अमयभूये ॥५३०५॥

[निशीथ भाष्य]

मद्दवकरणं णाणं,
तेणेव य जे मदं समुवहंति ।
ऊणगभायणसरिसा,
अगदो वि विसायते तेसिं ॥६२२२॥

[नि० भा०]

णाणं चरित्तसुद्धं···थोओ पि महाफलो होइ ॥६॥
[शील पाहुड]

वेण रागा विरज्जेज्ज,
जेण सेस्सु रज्जदि ।
जेण मेती पभावेज्ज,
तं णाणं जिणसासणं ॥२६८-५-८६॥

[मूलाचार गाथा]

अजगर सर्प सरीखा जो सोता रहता है
नष्ट-भ्रष्ट हो जाता उसका अमृत-रूपी ज्ञान।
और ज्ञान-श्रुत के विनष्ट हो जाने से जन
बैल-सरीखा बुद्धिहीन पशु के समान ॥

ज्ञान बनाता मृदु मानव को,
पर कुछ ज्ञानी ऐसे होते
जो कि ज्ञान के मद से उद्धत !
आधी भरी गगरिया जल की
हिचकोलों से जैसे छलकी
विष बन जाती उनको अमृत-रूपी औषधि।

ज्ञान शुद्ध हो यदि चरित्र से,
हो चाहे अत्यल्प मात्रा
तो भी वह महान् फलदाता
सफल करे जीवन की यात्रा ॥

ज्ञान वही है जिसके द्वारा
व्यक्ति राग से रहित बने।
हर प्राणी से मित्र-भाव हो,
श्रेय-मार्ग में रत स्वभाव हो
जिस चिन्तन के द्वारा मन मे
वही ज्ञान है जिन-दर्शन में।

नाणेण य झायेण य,

तवोबलेण य वाला निरुधंति ।

इंदिअविसयकसाया,

धरिया तुरगा व रज्जूहिं ॥६२१॥

[मरण समा०]

अप्पा कत्ता विकत्ता य,

दुहाण य सुहाण य ।

अप्पा मित्तममित्तं च,

दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥२०।३७॥

[उत्तराध्ययन]

जीवो परिणमदि जदा,

सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।

सुद्धेण तदा सुद्धो

हवदि हि परिणामसभावो ॥१।९॥

[प्रवचनसार]

जारिसिया सिद्धप्पा,

भवमल्लिय जीव तारिसा होंति ॥१८॥

[नियमसार]

जिस प्रकार वल्गा से करते
वश में घोडा,
उसी भाँति से ज्ञान-ध्यान औ तप के द्वारा
इन्द्रिय-विषय, कषायो को वल-पूर्वक वश में
करते हैं ज्ञानी-ध्यानी जन ।

आत्मा

आत्मा ही सुख-दुखों की
भोक्ता है और कर्ता ।
पुण्य-कर्मी आत्मा है मित्र जैसी,
और जो दुष्कर्म-रत, वह शत्रु है ।।

है परिणमन स्वभाव आत्मा का
परिणत होता जव वह शुभ या अशुभ भाव मे
तदनुसार ही वन जाता उसका स्वरूप भी
तद् प्रभाव मे ।

मुक्त-मना सिद्धों की होती
मुक्त आत्मा जैसी
ससारी जन की भी होती
मूल रूप में वैसी ।

केवल सत्तिसहावो, सोहं इदि चिंतए णाणी ॥९६॥

आलंबणं च मे आदा ॥९९॥

[नियमसार]

एगो मे सासदो अप्पा,

णाणदंसणलक्खणो ।

सेसा मे बाहिरा भावा,

सव्वे संजोगलक्खणा ॥१०२॥

[नियमसार]

अप्पाणं विणु णाणं,

णाणं विणु अप्पगो न संदेहो ॥१७१॥

[नियमसार]

सुपरिणामो पुण्णं,

असुहो पावं ति हवदि जीवस्स ॥१३२॥

[पंचास्तिकाय]

केवल शक्ति-रूप भर हूँ मै
ज्ञानी इतना ही सोचे ।
मेरा एकमात्र आलम्बन
केवल मेरी आत्मा ।

दर्शन-ज्ञान-रूप यह मेरी आत्मा
शाश्वत-तत्त्व महान् है ।
राग-द्वेष, कर्म आदि के
ये जितने भी भाव हैं,
ये सब मेरे नही अपितु सयोग-जन्य है
केवल बाह्य-प्रभाव हैं ।

नही आत्मा के अभाव मे ज्ञान है
और ज्ञान के विना नही है आत्मा
एक दूसरे के दोनों पूरक-परिपूरक
ज्ञान-आत्मा, यह निश्चित सिद्धान्त है ।

शुभ परिणमन आत्मा का ही पुण्य है,
और अशुभ परिणाम कलुष है–पाप है ।

दुःखे णज्जइ अप्पा ।।६५।।

तिपयारो सो अप्पा,

परमंतरबाहिरो दु हेऊणं ।।४।।

अक्खाणि बहिरप्पा,

अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो ।।५।।

[मोक्ष पाहुड]

छुहतण्हभीकरोसो रागो मोहो चिन्ता जरा रुजा मिच्चू ।

स्वेदं खेद मदो रइ विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो ।।६।।

णिस्सेसदोसरहिओ केवलणाणाइपरमविभवजुदो ।

सो परमप्पा उच्चइ तव्विवरीओ ण परमप्पा ।।७।।

[नियमसार]

तिमिरहरा जइ दिट्ठी,

जणस्स दीवेण णत्थि कायव्वं ।

तह सोक्खं सयमादा,

विसया किं तत्थ कुव्वंति ? ।।१६७।।

[प्रवचनसार]

आत्मा को जानना निश्चय कठिन ।
तीन इसकी कोटियाँ है
तीन है इसके प्रकार—
आत्मा, बहिरात्मा, परमात्मा ।
इन्द्रियो मे जो कि है आसक्त-
वह बहिरात्मा है ।
आत्म-अनुभव-रूप, संकल्पित हृदय मे
है उसी का नाम अन्तर आत्मा ।
[और तीनो का मिलन परमात्मा]

कितने बध लगे आत्मा को, कितने बध लगे ।
रोग, बुढापा, मृत्यु, भय, क्षुधा, द्वेष, उद्वेग,
तृष्णा, राग, मोह, चिन्ता, मद औ' निद्रा का वेग ।।
विस्मय, खेद, पसीना, रति के साथ जन्म का बध,
इन अट्ठारह दोषो का है आत्मा से सम्बन्ध ।।
जो इन सबसे मुक्त है—वैभव से सयुक्त है
केवलज्ञानी आत्मा, वह निश्चय परमात्मा ।।

जिसकी दृष्टि स्वयं करती हो
अन्धकार का नाश,
उसको जलता दीप भला क्या-
-देगा ज्योति प्रकाश ।
इसी भाँति जिसकी आत्मा का
सुखस्वरूप मे हुआ विलय
वह तो परमानन्द लीन है
क्या सुख देगे उसे विषय ?।

सपरं बाधासहियं,

विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं ।

जं इन्दियेहिं लद्धं, तं सोक्खं

दुःखमेव तहा ॥१।७६॥

[प्रवचनसार]

सारद सलिलं व सुद्ध हियया,...

विहग इव विप्पमुक्का,...

वसुंधरा इव सव्व फासविसहा ॥२।१।१५॥

[सूत्रकृतांग]

लाभालाभे सुहे दुःखे, जीविए मरणे तहा ।
समो निंदा पसंसासु, समो माणावमाणओ ॥१९।९१॥

[उत्तराध्ययन]

णत्थि य से कोइ वेसो,

पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु ।

एएण होइ समणो,

एसो अन्नो वि पज्जाओ ॥

[अनुयोगद्वार सूत्र]

जो आनन्द प्राप्त करती हैं इन्द्रियाँ
वह पर-आश्रित ।
बाधा-सहित, बंध का कारण
विषम और विच्छिन्न है ।
अतः वस्तुतः
वह सुख नहीं, दुःख ही होता
इन्द्रिय-जन्य सुखों से निश्चय
आत्मानन्द विभिन्न है ।

मुनि-श्रमण

मुनिजनों का मन शरद् ऋतु की नदी सा
पारदर्शी स्वच्छ निर्मल नीर ।
बन्धनों से मुक्त पक्षी सा सहज-स्वच्छन्द,
और पृथ्वी की तरह सम भाव से,
सुख-दुखों की सहन करता पीर ।

लाभ-हानि, जीवन-मरण,
सुख-दुख, मान-अपमान,
निंदा-स्तुति में सम रहे
मुनि उसको ही जान ।

सच्चा श्रमण वही है जिसका
नहीं किसी से द्वेष हो ।
सारे जीव जिसे प्यारे हों,
समदर्शी परिवेश हो ।।

जो भिंदेइ खुहं खलु,

सो भिक्खू भावओ होइ ॥३७५॥

नाणी संजम सहिओ नायव्वो भावओ समणो ॥३८६॥

[उ० नि० आचार्य भद्रबाहु]

तत्स्वाभाव्यादेव प्रकाशयति,

भास्करो यथा लोकम् ।

तीर्थप्रवर्तनाय प्रवर्तते,

तीर्थंकर एवम् ॥

(नन्दिसूत्र ।२ की मलयगिरि टीका)

अभिवंसु पुरा वि भिक्खवो,

आएसा वि भवंति सव्वता ।

एयाइं गुणाइं आहु ते,

कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥

(सूत्रकृताग १-२-३-२०)

जो अपने मन की तृष्णा का भेदन करता
भिक्षु वही है भाव रूप मे ।
संयम की सज्ञान-साधना में जो रत है-
वही श्रमण है सत्य रूप में ।

तीर्थंकर

जैसे सूरज निज स्वभाव से
लोक प्रकाशित करने को होता सकल्पित
उसी भाँति से तीर्थंकर भी
सारे ही प्रवृत्त होते है
तीर्थ-वर्तना के हित अपने निज स्वभाव से ।
(जन-समाज को ज्योति दिखाते स्वस्थ भाव से)

कोई भी तीर्थंकर, होता नही-
प्रवर्तक नये धर्म का !
अनुवर्तक होता है केवल पूर्व-धर्म का ।
भूतकाल के
या भविष्य मे होने वाले सब तीर्थंकर
व्रती-संयमी महापुरुष होते है-होगे,
जन समाज को
दिशा-वोध देते हैं-देगे ।

जे पुव्वरत्तावररत्तकाले,

संपेहए अप्पगमप्पएणं ।

किं मे कडं किंच मे किच्चसेसं,

किं सक्कणिज्जं न समायरामि ।।२।१२।२०।।

[दशवैकालिक, चू०]

कुणमाणोऽवि निवित्ति

परिच्चयंतोऽवि सयण धन भोए ।

दितोऽवि दुहस्स उरं,

मिच्छद्दिट्ठी न सिज्झई उ ।।२२०।।

[आ० भद्रबाहु, आचा० निर्युक्ति गाथा]

साधक

हे जागृत साधक, हे मानव !
रोज़ साँझ को–रोज सवेरे
सम्यक् आत्म-निरीक्षण कर ।
क्या क्या काम किये तूने,
क्या नही किये है ?
कितने करने और शेष है पुण्य कर्म, जो–
अब तक तू कर नही सका है ?
इन सबका लेखा जोखा ले,
निज का आत्म-परीक्षण कर ।
रोज साँझ को–रोज सवेरे,
सम्यक् आत्म-निरीक्षण कर ।

भोग-विलास, स्वजन-धन त्यागे सब आराधक
सहन करे अगणित कष्टो को धीर भाव से,
किन्तु दृष्टि यदि मिथ्या है चिन्तन की साधक !
मोक्ष नही मिल पायेगा तप के प्रभाव से ।
करे साधना चाहे कितनी भी निवृत्ति की
निश्चय, दृष्टि-दोष सिद्धि मे होगा बाधक ॥

आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं,
सहायमिच्छे निउणत्थ बुद्धि ।
निकेयमिच्छेज्ज विवेग-जोग्गं,
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥४॥
न वा लभेज्जा नि उणं सहायं
गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
एक्को वि पावाइं विवज्जयंतो
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणे ॥५॥

[उत्त० अ० ३२]

लज्जा-दया-संजम-बंभचेरं,
कल्लाणभागिस्स विसोहि ठाणं ॥

(दश० अ० ६ गा० १३)

पमत्तो बहिया पास,
अपमत्तो परिव्वए ।

(आचा० श्रु० १ अ० ५ उ० २)

आगमचक्खू साहू,
इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि ॥३।३४ ॥

[प्रव० सार]

जो समाधि की इच्छा रखता,
ग्रहण करे वह परिमित और शुद्ध आहार।
निपुण बुद्धि वाले साथी की खोज करे,
और ध्यान के हित निर्जन मे करे विहार
मिले न साथी यदि अपने से अधिक गुणी-
या समान गुण वाला, तो निस्सग रहे ।
अनासक्त रह कर भोगों से, दुष्कर्मों का कर परित्याग
एकाकी विचरे, पापी का सग भूलकर नही करे ।

ब्रह्मचर्य, सयम, नियम,
लज्जा, चार विचार
साधक इनको साध ले
बने शुद्ध आचार ।

अप्रमत्त होकर विचरे धरती पर साधक
पुरुष प्रमादी होता धर्म-पंथ का बाधक ।

अन्य प्राणी इन्द्रियों की आंख वाले हैं,
किन्तु साधक को मिली है दृष्टि आगम की ।

अदीणो वित्तिमेसेज्जा,

न विसीएज्ज पंडिए ॥५।२।२८॥

पूणयट्ठा जसोकामी,

माणसम्माणकामए ।

बहुं पसवई पावं,

मायासल्लम च कुव्वई ॥५।२।३७॥

अणुमायं पि मेहावी,

मायामोसं वि वज्जए ॥५।२।५१॥

(दश वै०)

कोहं माणं च मायं च,

लोभं च पाववड्ढणं ।

वमे चत्तारि दोसे उ,

इच्छंतो हियमप्पणो ॥८।३७॥

कोहो पीइं पणासेइ,

माणो विणयनासणो ।

माया मित्ताणि नासेई,

लोभो सव्वं विणासणो ॥८।३८॥

(दश वै०)

पड़ रहा पूजा-प्रतिष्ठा के भँवर मे भ्रष्ट साधक ।
दौड़ता सम्मान के हित, मान-यश की भूख जिसको ।
पाप-कर्मों मे पडा है दम्भ रचता है अनेकों ।
आत्म-विद् पर शुद्ध साधक ।
चल रहा संसार-यात्रा मे सहज गति
शुद्ध साधक ।
खिन्न मन होता न उसका
भाव रहते हैं अदीने !
दूर है माया-मृषा से
संग अणु भर भी न बाधक !
आत्म-विद् वह शुद्ध साधक !!

माया-मान, क्रोध और लालच
सब पापों के मूल हैं।
साधक के संसार मे
चुभने वाले शूल हैं।
क्रोध, प्रीत का नाश करे तो—
करे विनय का मान ।
माया करती मैत्री—
—नष्ट, इसे तू जान ।
हर लेता सद्‌गुण सभी
लोभ हृदय मे जाग कर,
आत्मा का जो हित चाहे
इन सबका परित्याग कर ।
हे साधक, परित्याग कर ।
हे मानव, परित्याग कर ।

तणकणए समभावा,

पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४७॥

(बोध पाहुड)

सीलगुणवज्जिदाणं,

णिरत्थयं माणुसं जम्म ॥१५॥

[शील पाहुड आ० कुन्दकुन्द]

सीलं विसय विरागो ॥४०॥

[शी० पा० आ० कुन्दकुन्द]

कुलं विणासेइ सयं पयाता,

नदीव कूलं कुलडा उ नारी ॥३२५१॥

[बृहत्कल्प भाष्य]

रहे दृष्टि में तिनका-सोना एकसमान,
तभी दीक्षा और प्रव्रज्या उसको जान !

शील

शील-गुण से यदि नही सम्पन्न है जन,
जन्म मानव-कोटि मे है निष्प्रयोजन ।

(सम्यग्-दर्शन, ज्ञान, तप,
ब्रह्मचर्य, दम, सत्य,
औ' अचौर्य के साथ मिले जब
जीव-दया का रग)
ये सारे विराग मिलकर ही
बने शील के अंग ।

मुक्त आचरण वाली नारी करती दोनों कुल को भ्रष्ट ।
यदि सरिता स्वच्छन्द वहे तो, करती दोनो कूल विनष्ट ।

ण भूसणं भूसयते सरीरं,

विभूसणं सील हिरी य इत्थिए ।।४११८।।

[बृ० भा०]

जं मे तव-नियम-संजम-सज्झाय-झाणा–

ऽवस्सयमादीएसु जोगेसु जयना, से त्तं जत्ता ।।१८।१०।।

[भगवती सूत्र]

जयं चरे जयं चिट्ठे,

जयमासे जयं सए ।

जयं भुंजंतो भासन्तो

पावकम्मं न बंधइ ।।

[दश० अ० ४ गा० ८–९]

सम्मतरयणमट्ठा,

जाणंता बहु विहाइं सत्थाइं ।

आराहणा विरहिया,

भमंति तत्थेव तत्थेव ।। ४ ।।

[दर्शन पाहुड]

नारी के आभूषण लज्जा-शील है
शोभा नही बढा सकते बाहर के भूषण ।

विवेक-वृत्ति

स्वाध्याय-सयम-नियम
तप-आवश्यक ध्यान
इन योगो मे जो विवेक से युक्त वृत्ति है
वही हमारी यात्रा, और वही गन्तव्य
जीवन-लक्ष्य महान् !

जो विवेक से चले, खडा हो,
बैठे, भोजन करे,
उठे औ' सोये-जागे,
हो विवेक-सम्मत जिसका प्रत्येक आचरण
उसको बधते नही पाप-कर्मो के बन्धन ।

ज्ञान उतरे आचरण में

विविध वेद-वेदाग पढे, ले ज्ञान शास्त्र से,
किन्तु नही कर पाये यदि उनका आवाहन
अपने दैनिक व्यवहारो मे-आचारो मे,
तो समझो वह अर्थ-ज्ञान से शून्य
शब्द का ज्ञाता केवल
आध्यात्मिक जग के दर्शन कर नही सकेगा ।
[चिंतन का आचरणो मे प्रतिबिम्बित होना आवश्यक है]

सव्वहुं पि सुयमहीयं,
किं काही चरणविप्पहीणस्स ।
अंधस्स जह पदित्ता
दीव सयसहस्सकोडी वि ॥११५२॥

[विशे० आव० भा०]

परमाणुमित्तियं वि हु,
रागादीणं तु विज्जदे जस्सा ।
णवि सो जाणदि अप्पा-
णयं तु सव्वागमपरो वि ॥२०१॥

[समयसार]

जहा कुम्मे सुअंगाइं,
सहे देहे समाहरे ।
एवं पापाई मेहावी
अज्झप्पेण समाहरे ॥१-८-१६॥

[सुत्रकृतांग]

शत करोड दीपक भी जैसे
अन्धे को प्रकाश देने मे
होते हैं असमर्थ;
उसी भाति से,
विविध शास्त्र का ज्ञाता जन भी
यदि चारित्र-हीन हो तो फिर,
उसका सारा शास्त्र-ज्ञान भी
होता निष्फल व्यर्थ ।

जिसके मन मे अणु-परमाणु बराबर भी है
राग द्वेष का वास,
सकल शास्त्र का ज्ञाता होकर भी अज्ञानी
पाता नही प्रकाश ।
[होता नही उसे अपनी ही आत्मा का आभास ।]

जिस प्रकार कछुआ विपत्ति मे
लेता अपने अग समेट
उसी भाति से ज्ञानी जन भी
पाप-विषय की ओर अग्रसर
प्रकृत-इन्द्रियो के विकार को
लेते अपने आप समेट ।
निज अध्यात्म ज्ञान के द्वारा ।

सेवंतो वि ण सेवइ,
असेवमाणो पि सेवगो कोई ।
पगरणचट्ठा कस्सवि,
ण व पायरणोत्ति सो होई ॥१६७॥

[समयसार]

भावे विरत्तो मणुवो विसोगो,
एएसा दुक्खोहपरंपरेण ।
ण लिप्पई भवमज्झे निसंतो,
जलेण वा पोक्खरिणि पलासं ॥३२।६६।३४॥

[उत्तरा०]

जं मया दिस्सदे रूवं,
तं ण जाणदि सव्वहा ।
जाणवं दिस्सदे णंते
तम्हा जंपेमि केण हं ॥२६॥

[मोक्ष पाहुड]

ज्ञानी जन का मन वैरागी

ज्ञानी जन का मन का वैरागी ।
ग्रहण नही करता वह कुछ भी
और न करता त्याग ।
जो वैराग्य-परायण होता-
वह विषयो का सेवन करते रहने पर भी
उनको मन से नही भोगता ।
विषयासक्त व्यक्ति पर, इनको
नही भोगने पर भी मन से भोग रहा है ।
जैसे किसी अन्य के द्वारा
किसी कार्य को निर्देशित जन
स्वामी होता नही स्वय की चेष्टाओं का
उसी भाति से होता ज्ञानी जन का मन ।

मोह शोक उत्पन्न नही करती है जिस ज्ञानी के मन में
परम्परागत दु खो की अनवरत शृ खला
वह साधक इस भवसागर मे ऐसे रहता
जैसे जल के बीच कमल का पत्र निर्जला ।

मेरा मौन सकारण है

किससे वार्तालाप करू मै किससे बोलू ?
रूप-देह, जो मुझे समक्ष दिखाई देता
वह जड होने से कुछ भी तो नही जानता ?
और आत्मा, जो शरीर के भीतर रहती,
यद्यपि वह ज्ञायक चेतन है,
पर अदृश्य है ।
तब किससे मै करू वार्ता,
किससे बोलू ?

जला जा रहा यह संसार

वन में लगी अग्नि मे जलते जीव देख कर
राग-द्वेष-वश अन्य जीव होते प्रसन्न ज्यो,
उसी भाति से काम भोग में लिप्त हम सभी
नही समझते—
यह सारा ससार हम सहित जला जा रहा
राग द्वेष की अमित अग्नि में ।

देव, यह वर दो !

दुखी जीव के लिए दया हो,
सव जीवों से मित्र-भाव हो,
हो प्रमोद-भक्ति गुणिजन मे ।
धर्म-विमुख विपरीत वृत्ति वाले जन मे भी
मेरे मन का हो माध्यस्थ-भाव स्थापित ।
प्रेम और वात्सल्य-पूर्ण चारो भावो को
मेरी आत्मा धारण करे, देव यह वर दो ।

सत्थं णाणं ण हवइ जह्मा सत्थं ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥३९०॥
सद्दो णाणं ण हवइ जम्हा सद्दो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥३९१॥
रूवं णाणं ण हवइ जम्हा रूवं ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥३९२॥
वण्णो णाणं ण हवइ जम्हा वण्णो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ॥३९३॥
गंधो णाणं ण हवइ जम्हा गंधो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा विंति ॥३९४॥
ण रसो दु हवदि णाणं जम्हा दु रसो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं रसं य अण्णं जिणा विंति ॥३९५॥
फासो न हवइ णाणं जम्हा फासो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥३९६॥
कम्मं णाणं न हवइ जम्हा कम्मं ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा विंति ॥३९७॥
धम्मो णाणं ण हवइ जम्हा धम्मो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा विंति ॥३९८॥
णाणमधम्मो न हवइ जम्हाधम्मो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥३९९॥
कालो णाणं न हवइ जम्हा कालो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा विंति ॥४००॥
जम्हा जाणइ णिच्चं तम्हा जीवो दु जाणओ णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥४०३॥
णाणं समादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥४०४॥

जो निज मे कुछ नही जानता उसे नही कह मकते ज्ञान ।
शास्त्र अन्य है, ज्ञान अन्य है
शास्त्र नहीं है विज्ञ स्वय मे
नही जानता अपने मे कुछ
अतः भिन्न है शास्त्र ज्ञान से ।

इसी भाति से शब्द, रूप
रस, गध, स्पर्श भी
वर्ण, कर्म भी
विज्ञ नही अपने मे कोई भी इनमे से
अत भिन्न है ज्ञान सभी से

काल-द्रव्य, आकाश आदि भी
नही जानते हैं निज में कुछ
अतः नही हैं ये भी ज्ञान ।

ज्ञान नही **धर्मास्तिकाय** भी
नही उसे भी कोई भान
अध्यवसाय अचेतन-जड है
अतः नही है वह भी ज्ञान ।

केवल मात्र जीव ही सब कुछ जानता
अत. जीव ही ज्ञाता-ज्ञायक-ज्ञान है
भिन्न नही होता ज्ञायक से ज्ञान कभी
अत ज्ञान ही सयम है, दीक्षा है, सम्यग्दृष्टि है
धर्म अधर्म है, **अंगपूर्वगत** सूत्र है
बुधजन ऐसा जानते, जिन यह सब कुछ जानते ।

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदनागुणंसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।४६।।

[अष्टपाहुड ६४]

भावस्स णत्थि णासो
णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो ।।१५।।

[पचास्तिकाय]

सव्वं चिय पइसमयं,
उप्पज्जइ नासए य निच्चं च ।।५४४।।

[विशेपावश्यक भाष्य गाथा]

नत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्तो
वि पएसे,
जत्थं ण अयं जीवे न जाए वा,
न मए वा वि ।।१२।७।।

[भगवतीसूत्र]

दर्शन-अध्यात्म

रूप, गंध, रस-रहित है निराकार निःशब्द,
महिमाशाली जीव है चेतन-गुण से युक्त।
ग्रहण नहीं कर पाती इसको इन्द्रियां,
कोई चिह्न नहीं कर पाता है अभिव्यक्त।

भाव का नाश नहीं होता,
असत् का कभी न होता जन्म।

विश्व का हर तत्त्व प्रतिक्षण
जन्म लेता-नष्ट होता
नित्य भी रहता निरन्तर
शाश्वत है चिर सनातन।

अणु-परमाणु बराबर भी इस निखिल विश्व में
देश-प्रदेश नहीं है कोई, ऐसी कोई नहीं धरा है–
जहां न जन्मा जीव,
जहां पर नहीं मरा है।

जरामरण वेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरण मुत्तमं ।।२३।६८।।
सरीर माहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ।।२३।७३।।

[उत्तरा०]

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं ।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता ।।६।।

[नियमसार]

णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति,
ण चन्दिमा वड्ढति हायती वा ।।१।१२।७।।

[सूत्रकृताग]

जरा-मरण के महावेग में डूब रहा सारा संसार,
धर्म दीप है, गति है, उत्तम शरण, प्रतिष्ठा का आधार,
यह शरीर नैया है, जिसका जीव-आत्मा खेवनहार,
ऋषि-गण देह-रूप नौका से करते हैं भव-सागर पार।

पुद्गलकाय, अधर्म, धर्म, जीव, काल, आकाश।
ये सारे तत्वार्थ हैं सृष्टि इन्हीं का पाश॥

खगोल ज्ञान

उदय न होता सूर्य वस्तुत:
और न, होता अस्त।
घटता-बढ़ना नहीं चन्द्रमा
किन्तु हमारी दृष्टि उसी-
–भ्रम-पालन की अभ्यस्त।

बलं थामं च पेहाए,
सद्धामारुग्गमप्पणो ।
खेत्तं कालं च विन्नाय,
तहप्पाणं निजुंजए ॥८।३५॥

[दशवैकालिक]

जा जा वच्चई रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ ॥१४।२५॥
जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं,
जस्स वऽत्थि पलायणं ।
जो जाणे न मरिस्सामि,
सो हु कंखे सुए सिया ॥१४।२७॥

[उत्तराध्ययन]

जहा अंतो तहा बाहिं,
जहा बाहिं तहा अंतो ।

[आचा श्रु. १ अ २, उ. ५]

ज सेयं तं समायरे ।

[दश. अ. ४ गा. ११]

निज शरीर वल और स्वास्थ्य को,
अपनी श्रद्धा-क्षेत्र-काल को,
उचित ढग से जाचो-परखो,
और नियोजित करो स्वय का पूर्ण मनोवल
तव जुट जाओ शुभ कर्मो के सम्पादन में
निश्चय तुमको मिले सफलता,
मिले सफलता।

बीत गई जितनी भी राते
पुन. लौट कर कभी न आती,
पर जो करता धर्म आचरण
उसकी दिवस-निशा मुस्काती।
मित्र-भाव है नही मरण के साथ किसी का,
कोई इससे वच कर भाग नही सकता है,
कोई कह सकता है– होगा वह न कभी हत ?
अतः भरोसा करो न कल का रहो कर्म-रत।

जैसे वाहर, वैसे भीतर,
जैसे भीतर, वैसे वाहर।
अन्तरग औ' बाह्य तुम्हारा
मन-विचार-उच्चार सभी हो सत्य उजागर
करो आचरण वही कि जो हो अति श्रेयस्कर।

सच्चं...लोगम्मि सारभूयं,

...गंभीरतरं महासमुद्दाओ ।

सच्चं...सोमतरं चंदमंडलाओ,

दित्ततरं सूरमंडलाओ ।

सच्चं च हियं च मियं च गाहणं च ।

सच्चं पि य संजमस्स उवरोहकारकं

किंचि वि न वत्तव्वं ।

अप्पणो थवणा, परेसु निंदा ।

कुद्धो...सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज ।

लुद्धो लोलो, भणेज्ज अलियं ।।२।२।।

[प्रश्न व्याकरण सूत्र]

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे,

बलाबलं जाणिय अप्पणो य ।।२०।१४।।

सोहो व सद्देण न संतसेज्जा ।।२१।१४।।

[उत्तराध्ययन]

अप्पणो णामं एगे पत्तियं करेइ, णो परस्स ।

परस्स णामं एगे पत्तियं करेइ, णो अप्पणो ।

एगे अप्पणो पत्तियं करेइ, परस्सवि ।

एगे णो अप्पणो पत्तियं करेइ, णो परस्स ।।४।३।।

[स्थानांग]

सारभूत है सत्य जगत मे, सागर से बढ़कर गभीर,
चन्द्र-प्रभा से अधिक सौम्य है, सूर्याधिक तेजस्वी धीर।
जो हित-मित हो और ग्राह्य हो, ऐसा सत्य-वचन बोलो,
जो संयम का घातक हो तो, उस सच को मुख मत खोलो।
पर-निंदक औ' आत्म-प्रशसक है असत्य की गांठ खोलता,
लोभ-ग्रस्त भी झूठ बोलता, और मोह से सत्य तोलता।
सत्य-शील औ' विनय-भाव का
नाश किया करता क्रोधी जन।
[सद्गुण धारण करो सत्य के, बचो दुर्गुणो से मानव-मन!]

शक्ति को पहिचान अपनी, हे सबल जन!
हो उचित क्षण पर यथोचित आचरण
डर न केवल शब्द (गीदड़-भभकियो से)
घूम सारे राष्ट्र मे कर मुक्त विचरण
कर्म-पथ पर सिह सा निर्भीक बन।

कुछ जन ऐसे– जो केवल निज हित-साधन में लीन
कुछ उदार-जन, अपने हित को छोड़
अन्य के मगल मे तल्लीन
अपने साथ-साथ औरो के हित में रत कुछ मनुज महान्
भला, न अपना हो, न अन्य का
इस चिन्ता में रहते कुछ दुर्जन शैतान।

जह नाम महुरसलिलं,
सायरसलिलं कमेरण संपत्तं ।
पावेइ लोणभावं,
मेलणदोसाणुभावेण ।
एवं खु सीलवंतो,
असीलवंतेहिं मीलिओ संतो ।
हुंदि समुद्दमइगयं,
उदयं लवणत्तणमुवेइ ।। ११२७-२८ आव. नि.।।

[आचार्य भद्रबाहु]

ण मुयइ पयडिमभव्वो,
सुट्ठु वि अज्झाइऊण सत्थाणि ।
गुडदुद्धं पि पिबंता,
ण पण्णया णिव्विसा हुंति ।।३१७।।

[समयसार]

मणो साहस्सिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई ।
तं सम्मं तु निगिण्हामि धम्मसिक्खाइ कन्थगं ।।२३।५८।।

[उत्तराध्ययन]

तमे णाम एगे जोई
जोई णामं एगे तमे ।।४।३।।

[स्थानांग]

जहा पुण्णस्स कत्थई,
तहा तुच्छस्स कत्थई,
जहा तुच्छस्स कत्थई,
तहा पुण्णस्स कत्थई ।

[आचा. श्रु. १ अ २ उ ६]

तुमंसि नाम तं चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि ।
तुमंसि नाम तं चेव जं अज्जावेयव्वंति मन्नसि ।
तुमंसि नाम तं चेव परियावेयव्वं ति मन्नसि ।

[आचारांग १।५।५।।]

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं,
किं बहिया मित्तमिच्छसि ?
पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ,
एवं दुक्खा पमुच्चसि ।।१।३।३।।

[आचारांग]

अंधेरे के घेरे को तोड़
प्रकट होता है कभी प्रकाश,
कभा करते उजियारा कैद
मोह से ग्रस्त तिमिर के पाश।
[कभी ज्ञानी का अन्तर भी, दुराचारी हो जाता है।
और अज्ञानी के मन से, प्रकट होता जीवन का हास।]

धनिक और धनहीन सभी को
हितकर यह उपदेश।
राजा-रंक सभी पर लागू
यह अभिनव सदेश॥

जिसे तू चाहता है मारना मानव, स्वयं तू है,
जिसे परिताप देना चाहता, वह भी स्वय तू है।
पराजित कर जिन्हे शासित बनाना चाहता अपना—
नज़र अद्वैत की डाले, तो देखेगा, स्वयं तू है।

तेरा मित्र स्वय तेरे भीतर बैठा है,
खोज रहा तू बाहर किस सहयोगी को
मानव अपने निज का निग्रह करे अगर
दुख से मुक्ति मिले निश्चय दुख-भोगी को।

अणुन्नए नावणए महेसी,
न यावि पूयं, गरिहं च संजए ॥२१।२०॥
न सव्व सव्वत्थभिरोयएज्जा ॥२१।१५॥
पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा ॥२१।१५॥
नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेणं तवेण य ।
खंतीए मुत्तीए य, वड्ढमाणो भवाहि य ॥२२।२६॥

[उत्तराध्ययन]

पुरिसम्मि दुव्विणीए,
विणयविहाणं न किंचि आइक्खे ।
न वि दिज्जति आभरणं,
पलियत्तियकण्ण-हत्थस्स ॥६२२१॥

[निशीथ भा०]

आमे घडे निहित्तं,
जहा जलं तं घडं विणासेति ।
इय सिद्धंतरहस्सं,
अप्पाहारं विणासेइ ॥६२४३॥

[नि० भा०]

नीति-वचन

गर्व मत कर सुन प्रशंसा के वचन
और निन्दा से न खुद को हीन कह।
मन लगा मत हर कही हर वस्तु में
प्रिय-अप्रिय सम-भाव से निर्लेप सह।
ज्ञान, दर्शन, तप, क्षमा, निर्लोभता—
—की दिशा मे बढ सदा सुचरित्र रह।

कंकरण-कुण्डल आदि विभूषरण
उस जन को देना है निष्फल
जो कि हाथ औ' कर्णहीन है।
इसी भाँति से दुर्विनीत को
सदाचार की शिक्षा देना
निष्फल-वर्जित-अर्थहीन है।

कच्चे घट मे जल भर दो तो
हो जाता है नष्ट घडा ही
उसी भाँति से मन्दबुद्धि को—
—दिया हुआ गम्भीर ज्ञान भी
उस अपात्र के घट मे जाकर
कर देता है नाश उसी का।

कोहविजए णं खंतिं जणयई ॥२६।६७॥

माणविजए णं मद्दवं जणयई ॥६८॥

मायाविजए णं अज्जवं जणयई ॥६९॥

लोभविजए णं संतोसं जणयई ॥२९।७०॥

[उत्तरा०]

जह वा विसगंडूसं, कोई घेत्तू ण नाम तुण्हिक्को ।

अण्णेण अदीसंतो, किं नाम ततो न व मरेज्जा? ॥५२॥

[आ. भद्रबाहु.सूत्रकृतांग नि. गा.]

जोइंति पक्कं न उ पक्कलेणं,

गवेंति तं सूरहगस्स पासे ।

एक्कंमि खम्भम्मि न मत्तहत्थी,

वज्झंति वग्घा न य पंजरे दो ॥४४१०॥

[वृह० कल्प भा०]

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि,

भण्णमाणस्स सगणवासिस्स ।

कडुगं व ओसहं त,

महुरविवायं हवह तस्स ॥३५७॥

[भगवती आराधना]

क्षमा-भाव जाग्रत हो, जीते क्रोध अगर
मिले नम्रता, यदि जीते अभिमान-दोष ।
माया जीते, मिले सरलता
निर्लोभी पाता सन्तोष ॥

लुक-छिप कर विष पीले कोई
तो क्या उससे नही मरेगा ?
लुक-छिप कोई पाप करे तो
किस प्रकार निर्दोष रहेगा ?

एक खंभ से नही बाँधते
जैसे दो उन्मत्त गजों को
दो सिंहो को एक पीजरे में-
जैसे आवास न देते
उसी भाँति से, दो झगड़ालू-
व्यक्ति साथ-साथ रखना भी
निश्चय ही उपयुक्त नही है ।

कटु औषधि का भी परिणाम
मधुर हितकारी होता जैसे,
उसी भाँति से हे मुनिजन ! तुम
जो समाज को हितकारी हो
ऐसे वचन उचारो, चाहे-
अप्रिय लगे वे जन के मन को ।

सौवण्णियह्मिणियलं बंधदि कालायसं च जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ।।१४६।।

[समयसार]

खामेमि सव्व-जीवे
सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्व भूएसु
वेरं मज्झं न केण इ ।।

[प्रतिक्रमण सूत्र]

कोहं खमाइ माणं
मद्दवया अज्जोण मायं च
संतोसेण व लोहं
निज्जिण चतारि वि कसाए ।।१८१।।

[मरण समा०]

पूयादिसु णिरवेक्खो,
जिणसत्थं जो पढ़ेइ भत्तीए ।
कम्ममलसोहणट्ठं,
सुयलाहो सुहयरो तस्स ।।४६०।।

[कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा]

बेड़ी चाहे लौह की हो या चाहे स्वर्ण की,
पर दोनो ही बाँधती बन्धन मे जन को।
इसी भाँति से कर्म भी शुभ हो या चाहे अशुभ
दोनो बाँधे जीव को, विरत रखो मन को ।।

मेरी सबके साथ मित्रता,
नही किसी से वैर-शत्रुता,
मैने क्षमा किये सब प्राणी,
और मुझे भी क्षमा-दान दे,
जग के सारे जीवन धारी,
तो मैं उनका अति आभारी !

जीते क्रोध क्षमा से साधक
और मान को मार्दव से
माया को आर्जव से जीते
और लोभ सन्तोष से !

विविध

पूजा और प्रतिष्ठा की इच्छा तज कर
जो योगी बहुमान-भक्ति के भाव से
अथवा कर्म-दोप का शोधन करने के हित
पठन-मनन करता शास्त्रों का
उसको श्रुत या ज्ञान-लाभ
अत्यन्त सुलभ है !

सद्धं णगरं किच्चा,

तवसंवरमग्गलं ।

खन्ति णिउणपागारं,

तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥१२०॥

[उत्तराध्ययन सूत्र]

दंसणणाणे विणओ,

चरित तव ओपचारिओ विणवो ।

पंचविहो खलु विणओ,

पंचमगइणामगो भणिओ ॥३६४॥

[मूलाचार गाथा]

विणओ मोक्खद्दारं,

विणयादो संजमो तवो णाणं ।

विणएणाराहिज्जइ,

आयरिओ सव्वसंघो य ॥१२९॥

[भगवती आराधना]

श्रद्धा या सम्यक्त्व-रूप नगरी मे साधक
क्षमा आदि दश धर्म-रूप का दुर्ग बना कर
तप-संयम की जड़े अर्गला
तीन-गुप्ति रूप शस्त्रों से
दुर्जन कर्म-शत्रु को जीते।

पाँच प्रकार विनय के होते,
ज्ञान-विनय, दर्शन-विनय,
तप, चारित्र, उपचार।
दर्शन आदि पारमार्थिक
गुण का करो विचार।
इनके प्रति बहुमान रहो
यह निश्चय-नय है।
गुरु-जन, गुणी जनो, वृद्धो को
सविनय दो सम्मान
यही व्यवहार-विनय है।
[जो निश्चय ही निश्चय-नय से पैदा होता।
निश्चय-नय के बिना नही व्यवहार विनय है ।।]

[महिमा अपरम्पार है]
विनय मोक्ष का द्वार है।
सिद्ध हुआ करता सयम–
–तप, ज्ञान, विनय से !
और विनय के द्वारा ही सेवा सभव है–
–संघ और आचार्य की !

कोहादिसम्रावाक्खय

पहुदिमावणाए णिग्गहणं।

पायच्छित्तं भणिदं,

णियगुणचिंता य णिच्चयदो ।।११४।।

[नियमसार]

न कामभोगा समयं उवेंति,

न यावि भोगा विगहं उवेंति।

चे तप्पओसी य परिग्गही य,

सो तेसु मोहा विगहं उवेइ ।।३२।१०१।।

[उत्तरा०]

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते,

इयम्मि लोए अदुआ परत्था।

दीवप्पणट्ठे व अणन्तमोहे,

नैया यं दट्ठुमदट्ठुमेव ।।४-५।।

[उत्तरा०]

प्रायश्चित परम औषधि है।
काया वचन और मन से जो
दोष नित्य लगते मानव को
उनके क्षय की रखो भावना
क्रोध आदि-रूप दोषों के
क्षय का सोचो, ज्ञानी ज्ञाता !
दर्शन-ज्ञान आदि सद्गुण का चिंतन करना
निश्चय प्रायश्चित्त कहाता।

काम-भोग आदि अपने में
शक्ति नही रखते समता की—
या कि विषमता की, पर मानव
खुद उनके प्रति राग-द्वेष कर,
उनका स्वामी-भोगी बनकर
मोह विकार-ग्रस्त हो जाता।

जिसके अभ्यंतर का दीपक नही जला है
वह प्रमत्त अति मोह-ग्रस्त जन
न्याय-मार्ग को लख कर भी
अनदेखा करता।
धन-ऐश्वर्य आदि का उसको
संरक्षण भी
किसी लोक मे नही मिलेगा।
[धन-ऐश्वर्य नही कुछ तेरा
त केवल संरक्षक भर]

अब्भंतरदोसेण ए,

बाहिरसोंधी वि होदि णियमेण ।

अब्भंतरदोसेण हु,

कुणदि णरणं बाहिरे दोसे ॥१६१६॥

[भगवती आराधना]

उवभोगमिंदियेहिं,

दव्वाणमचेदणाणमिदराणं ।

जं कुणदि सम्मदिट्ठी,

तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥१६३॥

[समयसार]

मरदु व जियदु व जीवो,

अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।

पयदस्स णत्थि बंधो,

हिंसामेत्तेण समिदस्स ॥२१७॥

[प्रव० सार]

अभ्यतर परिणाम मलिन होने पर होता
देह-वचन मे निःसदेह दोष परिलक्षित !
यदि हो पावन-शुद्ध मनुज का अन्तरतम तो
उसके वाह्यंतर की शुद्धि नियम से निश्चित ।

महिमा अकथनीय है सम्यग्दृष्टि की !
जो भी चेतन या कि अचेतन
–द्रव्यो का उपभोग करे इन्द्रिय के द्वारा सम्यग्दृष्टा
वे सव उसके लिये न होगी वधनकारी
अपितु निर्जरा की निमित्त ही वन जायेगी ।

जीव मरे या जिये, यह विषय
हिसा से सम्वद्ध नही है !
यत्राचार-विहीन प्रमत्त-जन
[जो समाज को नही समर्पित]
हिसक होते है निश्चय ही ।
पर इसके प्रतिकूल जगत् में
समिति-परायण, वे अप्रमत्त जन
[जिनका जीवन, जन-समाज को होता अर्पण]
उनको हिसा-वंध नही–
–लगता है (अपने कर्म-धर्म से)
वे प्रयत्नवान जन, मन से
हिसा-भाव नही करते हैं ।

आसवदारेहिं सया,
हिंसाईएहिं कम्मभासवइ ।
जह नावाइ विणासो,
छिद्दे हि जलं उयहिमज्झे ॥६१८॥

[मरणसमाजोग]

तथा रोसेण सयं,
पुव्वमेव उज्झदि हु कलकतेणेव ।
अण्णस्स पुणो दुक्खं,
करिज्ज रुट्ठो ण य करिज्जा ॥१३६३॥

[भगवती आराधना]

गुणाणामासओ दव्वं,
एक दव्वासिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु,
उभओ अस्सिया भवे ॥२८।६॥

[उत्तराध्ययन सूत्र]

हिंसादिक आस्रव-द्वारों के मार्ग से
कर्मो का प्रवेश होता है जीव-चित्त मे, इस प्रकार से
जैसे नौका मे छिद्रो से जल भरता है।
ऐसी नाव नष्ट हो जाती !

तप्त लौह के पिंड सरीखा
होता है सन्तप्त स्वय पहले क्रोधी जन
तदनन्तर वह अन्य किसी को
रुष्ट कर सकेगा या नही,
नही यह निश्चित।
क्योकि किसी को नियमपूर्वक दुखी बनाना
नही मनुज के हाथ में।

द्रव्य, गुणो का आश्रय होता।
एक द्रव्य के आश्रित रहते है अनेक गुण
जैसे एक आम के फल मे
रूप-रसादि विविध गुण रहते !
पृथक् द्रव्य से गुण न मिलेगा।
पर्यायों का लक्षण उभयाश्रित होता है।

वदणियमाणि धरंता,

सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।

परमट्ठबाहिरा जे,

णिव्वाणं ते ण विन्दन्ति ।।१५३।।

[आ० कुन्दकुन्द, समयसार]

जाणंतोऽवि य तरिउं,

काइयजोगं न जुंजइ नईए ।

सो बुज्झइ सोएणं,

एवं नाणी चरणहीणो ।।११५४।।

[आ भद्रबाहु, आव. नि.]

पढमं नाणं तओ दया,

एवं चिट्ठइ सव्व-संजओ ।

अन्नाणी किं काही ?

किं वा नाही य सेय-पावगं ।।

[दश. अ. ४ गा १०]

धारण करे नियम-व्रत सारे,
रखे शील का आचरण,
उदय न हो, परमार्थ-रूप यदि
आत्म-बोध की भावना–
तो भी वह निर्वाण न पाये
तप कितना भी करे श्रमण।

जो कि जनता है पानी में तैरना
वह भी भीषण जल-प्रवाह मे कूदकर
करता नही प्रयास तैरने का अगर-
तो मर जाता है पानी मे डूब कर।
इसी भाँति से जो कि जानता धर्म को
किन्तु न करता धर्माधारित आचरण
वह कैसे इस भवसागर से पार हो ?
वह कैसे कर सके मुक्ति का सहवरण ?

श्रेयस और अश्रेयस को
या पुण्य-पाप को
कैसे जान सके अज्ञानी ?
प्रथम ज्ञान है,
तत्पश्चात् दया, इस क्रम पर
अपनी संयम-यात्रा करता त्यागी प्राणी !!

जो वि पगासो बहुसो,
गुणिओ पच्चक्खओ न उवलद्धो ।
जच्चंधस्स व चन्दो,
फुडो वि संतो तहा स खलु ॥१२२४॥

[वृह० भाष्य]

इमं च मे अत्थि इमं च णत्थि,
इमं च मे किच्चं इमं अकिच्चं ।
तं एवमेव लालप्पमाणं,
हरा हरंति त्ति कहं पमाए ॥१४-१५॥

[उत्तरा०]

सव्वे पाणा पियाउया
सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा ।
पियजीविणो जीविउ कामा,
सव्वेसिं जीवियं पियं ॥२-३-७॥

[आचाराग]

चाँद चमकता रहता लेकिन
देख नहीं पाता जन्मांध
उसी भांति से चाहे बार-बार पढ़ डालो-
—विविध शास्त्र को
किन्तु न हो अनुभूति अर्थ की यदि स्पष्ट तो
मिलता नही शास्त्र का ज्ञान !

अमुक वस्तु है पास हमारे,
अमुक नही है,
अमुक कार्य कर लिया
अमुक है शेष अभी तक,
इस प्रकार की चिन्ताओ मे
व्याकुल प्राण, हरण कर लेता—
—दुर्जय काल, अचानक आकर,
इस यथार्थ से परिचित प्राणी
होते नही प्रमाद-प्रभावित ।

नही चाहता है कोई भी हत हो जाना,
हर प्राणी को प्रिय है जीवन ।
सभी चाहते जीवन मे सुख
दुख कोई भी नही चाहता ।

जमिरणं जगई पुठा जना,

कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ।

सयमेव कडेहि नाहई,

नो तस्स मुच्चज्ज पुट्ठयं ॥१-२-१-४॥

[सूत्रकृताग]

गुणेहि साहू अगुणेहि साहू,

गिण्हाहि साहू गुण मुंच साहू ।

वियाणिया अप्पगमप्पए णं,

जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥९-३-११॥

[दश वै०]

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं,

काएण वाया अदुमाणसेणं ।

तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा,

आइन्नओ खिप्पमिव बखलीणं ॥२-१४॥

[दश वै० चूलिका]

कोई अन्य नहीं हैं सुख-दुख देने वाला ।
इस धरती के सारे प्राणी
अपने ही कर्मो से पीडित ।
कर्मो का फल भोगे विना नही छुटकारा ।

गुण-दुर्गुण से ही होते है साधु-असाधु
अतः गुणो को ग्रहण करो,
दुर्गुण को छोडो !
जो अपनी आत्मा को जाने
निज आत्मा के माध्यम से
राग-द्वेष से मुक्त वही जन
पूजनीय है जन-समाज मे ।

जातिवान् घोड़ा वल्गा का इगित पाकर
जिस प्रकार चलने लगता है सही मार्ग पर
उसी भाँति से सम्यग्दृष्टि साधु कभी जब
असत्मार्ग के अभिमुख पाता है अपने को,
अपनी देह, वचन या मन को,
तुरत खीच कर उन्हे वहाँ से
आरोहित करता सत्पथ पर ।

धम्मम्मि जो दढमई,

सो सूरो सत्तिओ य वीरो य ।

ण हु धम्मणिरुस्साहो,

पुरिसो सूरो सुबलिओऽवि ॥६०॥

[सूत्र नि०, आ० भद्रवाहु]

अप्पाणं हवइ सम्मत्तं । २० (दर्शन पाहुड)

सोवाणं पढं मोक्खस्स । २१ (द० पा०)

णाणं णारस्स सारो । ३१ (द० पा०)

हेयाहेयं च तहा, जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥५॥

(सूत्र पाहुड)

दोणे णामं एगे णो दीणमणे ।

दीणे णामं एगे णो दीणसंकप्पे ॥४-२॥

(स्थानाग)

जो अपने कर्तव्य-धर्म मे निष्ठा रखता
सच पूछो तो शूरवीर-बलवान वही है।
सक्षम होकर भी जो अपने-
-कर्तव्यो से उदासीन है-
वह काहे का वीर-बली है?
उसकी आत्मशक्ति क्षीण है।

सम्यक्त्व है आत्मा
और मोक्ष की पहली सीढी सम्यग्दर्शन।
ज्ञान, सार मानव-जीवन का।
सम्यग्दृष्टा वही कि जो
जानता हेय और उपादेय को।

कुछ जन वे जो देह और धन से होते लाचार,
पर उनका संकल्प और मन होता बड़ा उदार।

थोड़ा सा भी अंश हो, ऋण-व्रण-अग्नि-कषाय।
करो उपेक्षा तो यही अति विस्तृत हो जाय।

धर्म-प्राण जन रहे जागते तो हितकर
और अधर्मी जन का सोना श्रेयस्कर।

महापुरुष जिस पथ पर चल कर
बना गये हैं जिसे सरल
वह पथ दुर्गम नहीं, चले—
जन-साधारण उस पर अविरल।

असुहो मोह-पदोसो,

सुहो व असुहो हवदि रागो ।

[प्रवचन० २ ८८]

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो ।

पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ।।१३७।।

[पचास्तिकाय]

मोह और अज्ञान अशुभ ही होते है
किन्तु राग, शुभ और अशुभ दोनों होता है।

भूखे-प्यासे दुखी जनो को देख स्वय जो पाता क्लेश
हरता उनके कष्ट उसी को अनुकम्पा का मिले प्रवेश।
[आत्मा लोक प्रकाशित उसका, धर्म प्राण वह, सत पुरुष]
दीन-हीन जन को अपना कर देता उन्हे अभय-परिवेश।